सिद्धयोग

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्तों और
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

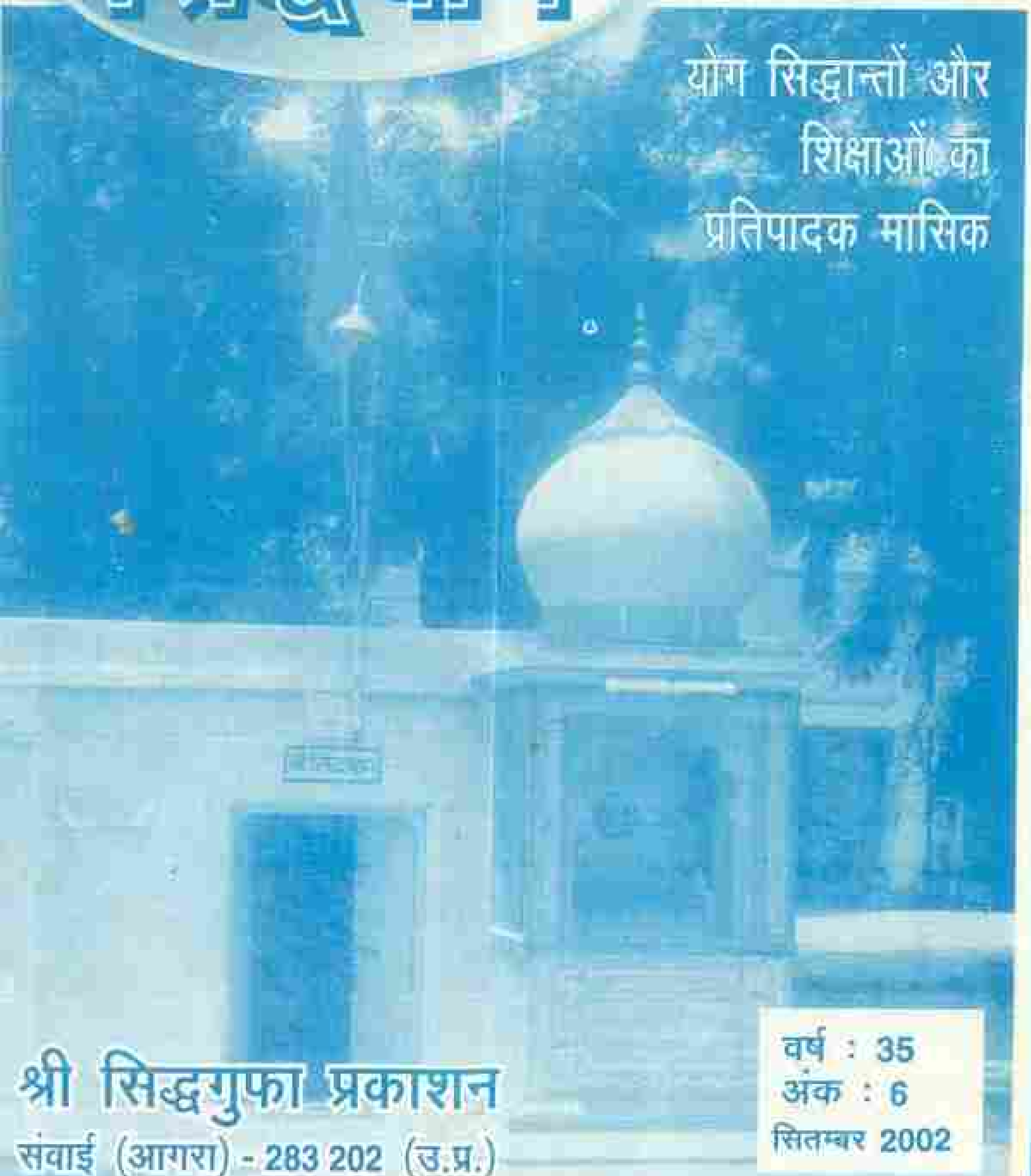

वर्ष : 35
अंक : 6
सितम्बर 2002

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा) - 283 202 (उ.प्र.)

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार
मण्डलों के अध्यक्ष
एवं
गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु०	9-00
वार्षिक शुल्क	रु०	90-00
द्विवार्षिक	रु०	170-00
आजीवन	रु०	800-00

इस अंक में

- अमृत कण 2
- श्रद्धा एवं सत्संग का वास्तविक स्वरूप (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 10
- गुरुभाव की साधना
  प्रो० आचार्य चन्द्रहास शर्मा 12
- मंजुला ने जानी गुरुमंत्र जप की महिमा
  राजेश कुमार श्रीवास्तव 16
- रामभक्तिपरक साहित्य का हनुमद्भक्तिपरक पर प्रभाव
  डा० केशवराम शर्मा 22
- कुण्डलिनी जागरण
  डा० विजय सिंह 26
- कला एवं सिद्धयोग की परिभाषा तथा सैद्धान्तिक स्वरूप
  कु० राजकिशोरी सिंह 30
- सिद्धयोग साधना शिविर कांगड़ा (हि.प्र.)
  केशवदेव उपाध्याय 33
- स्वास्थ्य चर्चा 37

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 35
अंक 6

सितम्बर
2002

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मूख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

यो देवो अग्नौ यो अप्सु
यो विश्वं भुवनमावि वेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमो नमः।।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् २/१७

भावार्थ

जो परमदेव परमात्मा अग्नि में है; जो जल में है; जो समस्त लोकों में प्रविष्ठ हो रहा है; जो औषधियों में है तथा जो वनस्पतियो में है, उन परमदेव परमात्मा के लिए नमस्कार है—नमस्कार है!

अमृत कण

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

(श्रीमद्भागवतगीता)

ब्रह्मभाव को प्राप्त पुरुष का आत्मा प्रसन्न होता है, न वह शोच करता है, न आकांक्षा करता है; सब भूतों में समान भाव रखता हुआ मेरी पराभक्ति को प्राप्त करता है।

* * *

महात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा।

–नारदपाञ्चरात्र

विशुद्ध अवस्था में यह एक भक्तिरस है किन्तु जब इसमें सत्व, रज और तम त्रिगुण का मेल हो जाता है तब यह भक्ति तीन, नौ, इक्यासी और आगे चलकर अनन्तविध हो जाती है।

* * *

तावन्निशीथवेताला वल्गन्ति हृदि वासनाः।
एकतत्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः।।

–योगवाशिष्ठ

जब तक एक तत्व के दृढ़ अभ्यास से मन को पूर्णरूप से जीत नहीं लिया जाता तब तक अर्द्धरात्रि में नृत्य करने वाले बेतालों के समान वासनाएँ हृदय में नृत्य करती रहती हैं।

* * *

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्।।

(श्रीमद्भागवत)

जिस प्रकार पानी में डूबते हुए प्राणियों के लिए सुदृढ़ नौका ही एकमात्र सहारा है, उसी प्रकार भयंकर संसार समुद्र में डूबते-उतरते हुए अत्यन्त दीन-दुःखी मनुष्यों के लिए अत्यन्त शान्त ब्रह्म वेत्ता साधु ही सबसे बड़े सहारे हैं।

विशेष लेख

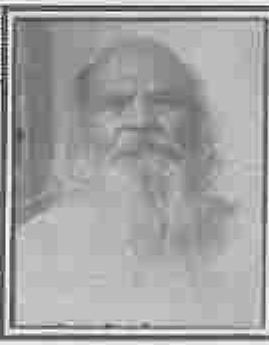

श्रद्धा एवं सत्संग का वास्तविक स्वरूप

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अभी-अभी मैं महात्मा ज्ञानी राम से 'गपोचन' की कथा सुन रहा था। जब कथा सुनाई जा रही थी, तो उस समय मेरे मन में भगवान् के शब्द घूम रहे थे-**श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः** अर्थात् भगवान् का रूप श्रद्धामय है, उसे मनुष्य जिस नाम और रूप में भजता है, ईश्वर उसको उसी नाम रूप में मिल जाते हैं।

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना:' के अनुसार हर प्राणी की मति में भेद रहता है। गुणों का तारतम्य हर जगह चलता रहता है। इसलिये मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा चिन्तन करता है उसे वैसी ही प्राप्ति होती है। गीता में भगवान् ने ज्ञान प्राप्ति के तीन साधन बताये हैं।

'श्रद्धावान्लभते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः।'

पहला साधन-श्रद्धावान होना। श्रद्धालु व्यक्ति ज्ञान को पा जाता है, दूसरा तत्परता अर्थात् जो साधना में तत्पर रहता है, लगा रहा है। और तीसरा साधन है-**'संयतेन्द्रिय होना'**। ये तीन उपाय हैं-तीन साधन हैं जिनके द्वारा मनुष्य यथार्थता को पा जाया करता है। मैं इस व्याख्यान में तुम्हें कुछ और भी बातें समझा देना चाहता हूँ मैंने तुम्हें यह बताया था-**भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्** अर्थात् जो विदेह देवता है और जो प्रकृतिलीन योगी हैं उनको जन्म से ही समाधि लगती है। दूसरे योगी होते हैं-उपाय प्रत्यय वाले उनके लिये सिद्धान्त है-

'श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वकमितरेषाम्।'

अर्थात् जो योगाभ्यासी हैं-उपाय प्रत्यय वाले योगी हैं, उनके लिये श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा ये क्रम हैं। इसलिये इस साधना मार्ग में श्रद्धा का स्थान पहला है। अस्तु।

श्री मद्भागवत् के एकादश स्कन्ध में भगवान ने एक सिद्धान्त की बात कही है-

'न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तिं न दक्षिणा।।
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमाः यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्।।'

अर्थात् मुझे योग रिझा नहीं सकता, मैं न तो सांख्य सिद्धान्त से अथवा धर्म पालन से ही अथवा स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्टापूर्ति एवं दक्षिणा से ही वश में होता हूँ। मुझे व्रत, यज्ञ वेदाध्ययन, तीर्थ तथा यम-नियम भी रिझा नहीं सकते। किन्तु सर्वसंगों का हरण करने वाला सत्संग जिस प्रकार मुझे रिझा लेता है, उस प्रकार से दूसरे कोई उपाय मुझे रिझा नहीं सकते। अब तुम कहोगे कि भगवान ने

यहाँ पर कह दिया कि योग भी मुझे रिझा नहीं सकता उधर गीता में भगवान स्वयं योग की ही जगह-जगह प्रशंसा करते हैं।

तस्माद्योगी भवार्जुन। अर्जुन तुम योगी बनो-**'तस्माद् सर्वेषु कालेषु योग युक्तो भवार्जुन'**। 'अर्जुन तुम हर समय योग युक्त रहो।' **योगी परमस्थानं उपैति चाद्यम्** अध्ययन से, यज्ञ से, तप से, दान से, जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उन सब को त्याग कर भी, योगी परम पुरुष को पा जाता है। इस प्रकार से गीता में भगवान योग का ही गुणगान करते हैं। और अर्जुन को योगी बनने की आज्ञा देते हैं। इस बात को तुम नहीं समझोगे। देखो ! योग के दो रूपक हैं एक है सिद्धयोग। दूसरा है, साधन योग। सिद्धयोग में गुरुदेव शिष्य को अपनी शरण में लेकर शक्तिपात से उसकी शक्ति जागृत कर देते हैं और उसे तत्काल ही ऊँची भूमिकायें प्रदान कर देते हैं। साधन योग में साधक साधना के बल से, धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।

नेति, धौति आदि षट कर्म-प्राणयाम तथा तप, स्वाध्याय ये सब साधन योग हैं। यहाँ पर भगवान् **'न रोधयति मां योगो'** में साधन योग की ओर इशारा करके कहते हैं कि इन साधनों से मैं वश में नहीं होता हूँ। वैसे साधन योग में भी यदि कोई स्वस्तिकासन, पद्मासन में बैठने का अभ्यासी बन जाये और **'समकाय शिरोग्रीवम्'** के तरीके से बैठने की आदत डाल ले, तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि उसकी सुषुम्ना चल पड़ेगी और यदि वह भजनानन्दी है तो उसका ध्यान लगने लग जायेगा। सुषुम्ना के अन्दर भी तीन नाड़ियाँ हैं। बाईं ओर वज्रा और दाईं ओर चित्रिणी है। बीच में ब्रह्मनाडी है। यदि प्राण वज्रा को स्पर्श करे, तो साधक जड़वत बैठा रहता है और यदि चित्रिणी को छूने लगे तो उसे दर्शन आदि होते हैं। ब्रह्म नाड़ी में गति होने पर वह शुद्ध प्रकाश की ओर बढ़ जाता है। निर्गुण चैतन्य की ओर, ब्रह्म ज्ञान की ओर। मेरे कहने का अभिप्राय यह कि कोई सीधा बैठने का ही अभ्यास कर ले तो वह योगी बन जाता है। **प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य** प्राणायाम का अभ्यास करता है तो उसका भी चित्त निर्मल हो जाता है। जिस प्रकार से अग्नि में डाल देने पर धातुओं के मल जल जाते हैं, उसी प्रकार से प्राणायाम से इन्द्रियों के मल जल जाते हैं। प्राणायाम का फल है-**''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्''** अर्थात् प्रकाश का जो आवरण है वह प्राणायाम से नष्ट हो जाता है। साधनयोग में तो साधक को अभ्यास करते-करते अपने परिणाम तक पहुँचना पड़ता है। इसलिये **'न रोधयति मां योगः'** इस पद में भगवान ने साधन योग की ओर संकेत करके, कह दिया है कि मैं योग क्रियाओं से वश में नहीं होता हूँ। यम नियम पालन एवं स्वाध्याय तपादि भी मुझे वैसे नहीं रिझा पाते, जैसे सब कुसंगों का हरण करने वाला सत्संग मुझे रिझा लेता है। तुम लोग सत्संग का अर्थ क्या समझते हो ? सत्संग का अर्थ यह नहीं है कि थोड़ी देर तुम लोग मिल लिये और भजन-कीर्तन आदि बोल लिये। सत्संग का सही अर्थ यह नहीं। **'सताम् महताम् सिद्धानाम् संगः सत्संगः'**। अर्थात् सिद्धों का, महापुरुषों का जो संग है, वह सत्संग कहलाता है। सिद्ध संगति से सब कुछ मिल जाता है। यदि सिद्ध आँख से देख भी लेता है तो शक्ति पात हो जाता है। किसी के प्रति मन में विचार बन जाये, इसका ऐसा हो जाये, तो शक्तिपात हो जाता है। और यदि वाणी से कह

दे-'**तस्माद् योगी भव।**' तू योगी हो जा। तो वह योगी बन जाता है। तो इस प्रकार से सिद्ध संगति का फल तो बहुत ही उत्कृष्ट होता है। इसलिये भगवान कहते हैं कि इस प्रकार का सत्संग यदि किसी को प्राप्त हो जाये तो फिर वह व्यक्ति मुझे प्रसन्न कर लेता है। अन्य-अन्य योग के साधन जैसे-तप तीर्थ आदि से मैं जल्दी प्राप्त नहीं होता। अभी तुम सब गपोचन की कथा सुन रहे थे। कथा को सुनते हुये मुझे भी श्रद्धा के रूप का ख्याल आ रहा था। परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जिसकी जैसी श्रद्धा बन जाती है परमात्मा उसके लिये वैसे ही बन जाता है। मुझे अपने एक बच्चे की याद आई है, वह मैं तुम्हारे सामने कह दूँ। पाँच दस वर्ष पहले पटना में बी एन सिन्हा की कोठी पर एक वकील मेरे पास आया करता था। बाद में वह महात्मा बन गया और अयोध्या में जाकर किसी वैरागी महात्मा से दीक्षा ले ली। वह भक्ति मार्ग में भगवान राम का भक्त बन गया। उसका एक बच्चा था, उसे वह यहाँ इलाहाबाद में ही हमारे पास छोड़ गया कि इसे आप अपने साथ रख लें। हमने उसे रख लिया। घर का नाम तो उसका कुछ और था किन्तु हमने उसका नाम योगानन्द रख लिया। उसमें भी भगवान राम की शक्ति के संस्कार बने हुये थे। हमने उससे पूछा-''राम जी कौन से लोक में रहते हैं ? वह कहने लगा-'' गुरु जी! राम जी तो सबसे ऊपर रहते हैं, उनसे बड़ा कोई नहीं है। ''हमने कहा-विष्णु जी से बड़े ?'' वह कहने लगा-''विष्णु जी से तो बहुत बड़े!'' हमने कहा-''कृष्ण जी से भी बड़े ? कहने लगा-''वह कृष्ण जी से बड़े हैं।'' मैंने कहा-''शंकर जी से''-''गुरु जी ! शंकर जी से तो वह बहुत बड़े हैं।'' राम जी सबसे बड़े हैं और वह सबसे ऊपर रहते हैं। वहाँ ब्रह्मा विष्णु आदि तो पहुँच भी नहीं सकते। मैं उसकी बात सुनता रहा। वह मुझे प्यारा लगता रहा। मैंने कहा-''ठीक है भई! रामजी सबसे बड़े हैं।'' यह उस की श्रद्धा की बात थी। ए बार हम अपने ऋषिकेश आश्रम में थे। वृन्दावन का हमारा एक बच्चा मृदुल गोस्वामी है। वह बिहारी जी के मन्दिर का पुजारी भी है, वह हमारे पास आ गया। बातचीत के प्रसंग में मेरे मुख से निकल गया-''**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**'' अर्थात् ये जितने अवतार हु हैं, ये सब कलाधारी मानव थे। किन्तु, कृष्ण स्वयं भगवान हैं। वह कहने लगा-गुरुजी ! हाँ, हाँ, आप ने बिल्कुल सच्ची बात कही है। कृष्ण जी तो भगवान हैं ही। फिर मुझ से कहने लगा गुरु जी ! एक बात और भी मैं आप को बता दूँ। मैंने कहा-''**अच्छा! बता, क्या बात है ?**'' वह कहने लगा, जो कृष्ण जी कुरुक्षेत्र गये थे न, उन से द्वारिकाधीश बड़े हैं। और द्वारिकाधीश में जो कृष्ण जी थे उनसे मथुरा वाले कृष्ण जी बड़े थे और मथुरा वाले कृष्ण जी से वृन्दावन वाले बड़े थे और वृन्दावन वालों से भी बिहारी जी बड़े हैं। मैंने पूछा-बिहारी जी से आगे और कोई बड़ा ? वह कहने लगा-'नहीं !' बिहारी जी से कोई बड़ा नहीं है। वही सबसे बड़े हैं। वह बिहारी जी का पुजारी है और भक्त है। इसलिये उसकी दृष्टि में बिहारी जी ही सबसे बड़े थे। मुझे उसकी ये बातें बड़ी प्यारी लगीं। मैंने सोचा- कितनी निष्ठा है। इसकी बिहारी जी में।

एक बार हम काठमाण्डू गये। वहाँ पर थोड़ी दूरी पर गुह्येश्वरी मन्दिर है। वहाँ से श्री प्रभु जी हिमालय गये थे। श्री प्रभु जी वहाँ बैठे हुये थे महाप्रभु जी आये और उनको अपने साथ आकाश

मार्ग से अपने स्थान पर ले गये थे। हम गुह्येश्वरी मन्दिर देखने गये। मन्दिर के साथ में छोटी सी पहाड़ी है। उस समय घूमने फिरने की आदत थी ही। अब तो यह शरीर गवाही नहीं देता, नहीं तो यहाँ इलाहाबाद में भी नित्य सात-आठ मील दूर जाकर शौचादि से निवृत होते थे। उस मन्दिर के साथ पहाड़ी की ओर हम आगे निकल गये। वहाँ जाकर घाटी में मुझे कुछ शोर सा सुनाई दिया, मैं उस घाटी के अन्दर चला गया। वहाँ जाकर मैंने देखा कुछ पहाड़ी लोग नाच रहे हैं उनमें कुछ स्त्रियाँ भी हैं। वे नाचते हुये कह रहे थे-**''चिन्चिडिंग चिन्चडिंग।''** मैंने पूछा- ''भाई! यह चिन्चिडिंग क्या है ?'' भाषा मेरी कोई नहीं समझता था। फिर एक आदमी मिला वह थोड़ा-थोड़ा हिन्दी बोल लेता था। वह मेरे पास आकर कहने लगा-''चिन्चिडिंग हमारा देवता है।'' मैंने कहा-''यह कौन सा देवता है ? मैंने इस देवता का नाम आज तक कभी सुना नहीं है। वह कहने लगा चिन्चिडिंग तो दुनियाँ में सबसे बड़ा देवता है। उनसे बड़ा और कोई नहीं।' मैंने पूछा-''शंकर जी, कृष्ण जी से भी बड़े।'' उसने कहा-''चिन्चिडिंग तो सबसे बड़ा देवता है, बाकी सब देवता उनसे छोटे हैं। इसलिये हम चिन्चिडिंग को जप रहे हैं।'

तब मेरे मन में आया-**''श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।'** अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है उनको जो जिस रूप में चाहेगा वे वैसे ही बन जायेंगे। योग दर्शन में भगवान् पतञ्जलि ने जो योगाभ्यासी हैं उनके लिये उपाय प्रत्यय अर्थात् साधन योग-क्रिया योग का उपदेश किया है। साधन योग भी कोई छोटी चीज नहीं है। यदि कोई ब्रह्मचर्य पूर्वक उसकी साधना करे तो सभी कुछ पा जाता है। लेकिन मनमाने ढंग से करने पर कुछ लाभ नहीं होता। अभी कुछ दिन पहले चण्डीगढ़ में किसी व्यक्ति ने योग दर्शन के **'भुवन ज्ञानम् सूर्ये संयमात्'** के अनुसार सूर्य में त्राटक करना आरम्भ कर दिया। संयम का अर्थ वह जानता नहीं था। उसने नंगी आँखों से सूर्य पर त्राटक लगाया। परिणाम यह हुआ कि तीन दिन के अन्दर उसकी आँखों की रोशनी जाती रही। ऐसे लोगों के लिये तो उक्ति यह है **''देखा देखी साधे योग। छीजै काया बाढ़े रोग।''**

गुरु उपदिष्ट होकर साधना करने से ही सफलता मिलती है। यदि गुरुपदिष्ट होकर ठीक प्रकार से साधना करें तो योग की एक क्रिया ही पराकाष्ठा तक पहुँचा देती है। त्राटक क्रिया में काला बिन्दु बना कर उस पर त्राटक का अभ्यास किया जाता है। वह काला बिन्दु त्राटक करते-करते सफेद बन जाता है। अर्थात् प्रकाशमय हो जाता है। उस प्रकाश वाली आँखों के भीतर बाहर जहाँ भी लगाओगे वहीं का सब दीखने लग जायेगा। उस प्रकाशयुक्त आँखों को भ्रूमध्य में स्थिर किया जावे तो फिर-**''मूर्धज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्''** के अनुसार मूर्धा ज्योति में उस प्रकाश को फेंक देने पर सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं। सिद्धों का दर्शन अमोघ होता है। सिद्ध प्रसन्न होकर शक्तिपात कर देते हैं और इससे समाधि लग जाती है। लोग साधना करते नहीं हैं, बस चाहते हैं यूँ ही काम हो जाये। मेरे पास दिन भर में ऐसे कितने ही आदमी आते हैं। एक आदमी ने आज दिन में आकर मुझ से कहा-कि शक्तिपात कर दो। शक्तिपात कोई मजाक की चीज थोड़ी है। यूँ थोड़े ही शक्तिपात हो जाता है। तुम पहले मेहनत तो करो अपने को उसका अधिकारी तो बनाओ, तो फिर शक्तिपात

करने वाले परमात्मा की शक्ति अपने आप मिल जायेगी। साधक को अपने आप को पहले उत्तम अधिकारी बना लेना चाहिये ! मृदु, मध्य एवं अधिमात्र-तीन प्रकार के अधिकारी होते हैं। जो सतोगुणी होते हैं, वे अधिमात्र श्रेणी के उत्तम अधिकारी होते हैं। रजोगुण वाला मध्यम तथा तमोगुण वाला मृदु अधिकारी अर्थात् निकृष्ट अधिकारी होता है। उत्तम अधिकारी बन जाने पर भी **"स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारसेवितो दृढ़ भूमि:"** पतञ्जलि जी के इस सूत्र को हमेशा याद रखना चाहिये। जो जल्द बाजी में रहते हैं वह धोखा खा जाते हैं। इसलिये दीर्घकाल सेवित-लम्बे समय तक चार छः वर्ष तक किया जाये तत्पश्चात् नैरन्तर्य- निरन्तर अर्थात् लगातार ! यह नहीं कि एक दिन कर लिया दो दिन छोड़ दिया। फिर एक दो दिन किया, फिर छोड़ दिया। ऐसा नहीं होना चाहिये। तीसरी बात है **"सत्कारासेवित"** सत्कार पूर्वक अभ्यास में लगा रहे। मन अत्यन्त चंचल है क्षण-क्षण में बदलता है। कभी सोचता है यह मन्त्र जपे, फिर कभी सोचता है, इस मन्त्र का जाप करे, कभी सोचता है ऐसे ध्यान करें। इस प्रकार से दुविधा में पड़ा रहता है। इस दुविधा को दूर करने के लिये ही तो गुरुदेव की शरण लेना जरूरी हो जाता है। गुरुदेव की शरण मिल जाने के बाद जो भी रास्ता विधि वे बतायें उस पर ही चलना चाहिये। उनके दिये हुये मन्त्र को ही सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिये। उसी का जाप करना चाहिये। जिस इष्ट देव का ध्यान बताया गया हो उसी का ध्यान करना चाहिये। अपने गुरुदेव में ही शक्ति व निष्ठा रखनी चाहिये।

"मन्नाथो त्रिजगन्नाथ: मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरु:" के अनुसार मेरे नाथ ही तीन लोक के स्वामी हैं। मेरे गुरुदेव ही जगद् गुरु-सबके गुरु हैं। ऐसी भावनाओं से गुरुनिष्ठ रहे। मेरा साधना मार्ग ही सर्वोत्तम है। मेरा मन्त्र सबसे बड़ा मन्त्र है। इस प्रकार से सत्कार पूर्वक अपनी साधना में लगे रहने पर वह साधना दृढ़ भूमि वाली बन जाती है। हमारा जो मन्त्र है, जो मैं अपने बच्चों को देता हूँ, उसके विषय में अनुभवी सन्तों और योगियों का लेख है कि इसका साढ़े तीन वर्ष तक जो लगातार जाप कर लेता है, वह सिद्ध हो जाता है। किन्तु इसके साथ-साथ कुछ और भी बातें हैं। साधक का पवित्र आचार-विचार का जीवन हो। इस प्रकार साधना करने से मनुष्य के अन्दर शक्ति का उत्थान होता चला जाता है। किन्तु हमारी इन्द्रियाँ शक्ति को क्षीण कर देती हैं जो भोग-विलासों में पड़ा रहता है, उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है बहुत से लोग हमसे प्रश्न किया करते हैं कि शक्तिपात करने पर शक्ति कायम रहती है या चली जाती है,? लोगों का ऐसा अनुभव है कि शक्तिपात होने पर शक्ति कुछ दिन चलती है और फिर क्षीण हो जाती है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। जो शक्ति जिसको दी जाती है, वह कायम रहती है बशर्ते वह संयम से रहे-ब्रह्मचर्य से रहे। जिन साधकों ने पुराने समय में हमारे कन्ट्रोल में रह कर साधना की है, उनको पता है कि किस प्रकार से बहुत जल्दी ही उत्थान होता है। इस प्रकार से जो साधना करते हैं वे योगी और सिद्ध तक हो जाते हैं। हमारे कितने ही बच्चे जंगलों में कन्दराओं में बैठे हुये हैं। ऐसे ही साधकों में एक बच्चा काश्मीर में गुलमर्ग-खिलमर्ग की तरफ हमारे बनारस के बच्चे प्रमोद और उसके साथी को मिला था। उसने जय गुरुदेव जी की करते हुये कहा था कि मैं भी गुरु देव का ही बच्चा हूँ और यहाँ पहाड़ पर साधना

करता हूँ।

मैंने तुम्हें क्रिया योग के विषय में संकेत किया था। क्रिया योग ही साधन योग है। साधन योग में साधक धीरे-धीरे **"श्रद्धावीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा"** की सोपान पर चढ़ते हुये लक्ष्य की ओर जाता है। इसी के साथ में क्रिया योग का अभ्यास किया जाता है ताकि साधक समाधि तक पहुँच जाये। क्रियायोग में तीन बातें होती हैं।

'तपस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः' तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को 'क्रिया योग' कहते हैं। उनमें सबसे पहला स्थान है तप का। सर्दी-गर्मी भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करके शरीर को साधना के अनुकूल बनाना तप कहलाता है।

मैंने तुम्हारे सामने कई बार अपने वृन्दावन के बचपन के साधु अगड़धत्ता की बात सुनाई है। वह उल्टी रीति का साधु था। सर्दियों में तो वह लंगोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं पहनता था। किन्तु गर्मियों में जेठ के महीने में तीन कम्बल ओढ़ लेता था इनमें से एक तो सिर पर बाँध सा लेता था और दो वैसे ही ओढ़ लेता था। लोग उनसे कहते-"महाराज! बहुत गर्मी है आप इन कम्बलों को उतार दें!" वह पहले तो कुछ बोलता ही नहीं था यदि बोलता तो कहता-"यदि तुम्हारा बाप ओढ़ता हो तो मैं उतार देता हूँ।" इस प्रकार से जवाब देता था। मैं उसकी इस बात को समझ गया था कि सर्दी गर्मी को सहने करने की दृष्टि से ही वह ऐसा किया करता था। प्राणायाम भी एक बहुत बड़ा तप है। हमने अपने बच्चे रघुनन्दन प्रसाद को घोर तप कराया था। उसने तीन महीने तक एक समय अल्पाहार करके तप किया। फिर अगले तीन महीने बेल के पत्ते खाकर तप करता रहा। फिर इसके बाद तीन महीने लस्सी (छाछ) पीकर तप करता रहा, साथ योग ध्यान का क्रम तो चलता ही था। उस प्रकार साधना करने से उसको **"ऋतम्भरा प्रज्ञा"** की प्राप्ति हो गई थी। सबसे बड़ा तप है इन्द्रिय निग्रह। मन तो क्षण-क्षण गिराने को तैयार रहता है इस पर कन्ट्रोल करना द्वन्द्व सहन है और यही तप है। यदि एक मनुष्य अपने आप को भोगों से निकाल लेता है तो वह परम तपस्वी है। तप का फल योग दर्शन में बताया है- **'कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धिक्षयात्तपसः'** अर्थात् तप से अशुद्धि क्षय होने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि मिलती है। कायिक सिद्धि-शरीर का अत्यन्त दृढ़ होना, निरोग एवं कान्तिमान होना है। ऐन्द्रिय सिद्धि से दूर-दूर की देखना, दूर की सुनना, दूर की गन्ध एवं रस का ग्रहण करना आदि-आदि ताकतें आ जाती हैं। तप की साधना के साथ-साथ स्वाध्याय को बढ़ावे अर्थात् मन्त्र जप में लगे रहना चाहिये। इधर से तप चल रहा है और साथ-साथ जप भी चल रहा है इसका परिणाम होगा-

"स्वाध्यायद्दिष्ट देवता सम्प्रयोगः" इस प्रकार तपयुक्त स्वाध्याय से इष्ट देव का दर्शन होता है। ऋषि, मुनि एवं सिद्ध लोग उसको दर्शन देते हैं और उसको वरदान आदि मिलता है। इस प्रकार तप-स्वाध्याय करते-करते साधक कुदरती ईश्वर प्रणिधान की ओर निकल जाता है। ईश्वर प्राणिधान का अर्थ है आत्म समर्पण। यूँ तो हर व्यक्ति कह दिया करता है कि "मैंने तो अपना आपा सौंप दिया है, अब आप जानो"। वाणी से तो कह दिया। किन्तु वाणी से कह देने पर फिर अपनी

इच्छाओं के अनुसार क्यों चलो ? जैसा मैं चाहूँ वैसा करो। यदि साधक अपने मन के अनुसार ही काम करता है, तो उसने अपने आप को सौंपा ही नहीं, काम तो अपने मन के अनुसार करता है और सौंपने का नाम लेता है। सौंपने का अर्थ होता है–**"यद् करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।"** जो खाते हो, जो करते हो, जो देते हो, जो हवन करते हो, जो तपस्या करते हो, वह सब इष्ट के लिये होना चाहिये उसकी एक-एक हरकत अपने इष्ट के लिये होती है। इस प्रकार से तप होता रहे। स्वाध्याय से सिद्धों का दर्शन एवं आशीर्वाद मिल गया इन दो ताकतों के मिल जाने पर ईश्वर प्रणिधान अर्थात् आत्म निवेदन अपने आप हो जायेगा जिस का फल है-समाधि। **"समाधिसिद्धीरश्वर प्रणिधानात्"** अर्थात् ईश्वर प्राणिधान से समाधि सिद्धि मिलती है यह योग दर्शन का सूत्र है। अस्तु बात श्रद्धा से प्रारम्भ हुई थी। जो योग मार्ग में चलना चाहते हैं उनके लिये श्रद्धा सबसे पहली और जरूरी चीज है।

"श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः"। चित्त की प्रसन्नता का नाम श्रद्धा है श्रद्धा योगी की माँ की तरह रक्षा करती है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे की हर प्रकार से रक्षा करती है, उसी प्रकार से श्रद्धा भी योगी की रक्षा किया करती है। श्रद्धा से क्या मिलता है ? इस पर व्यास जी भाष्य में कहते हैं–

'श्रद्दधानस्य विवेकार्थिनो वीर्यमुपजायते' श्रद्धा के आने के बाद साधक के मन में साधना के प्रति उत्साह बढ़ जाता है–दृढ़ता आ जाती है।

'समुपजात वीर्यस्य स्मृतिरुपतिष्ठते' और जब दृढ़ता आ जाती है, तो साधक की स्मृति कायम करती है और स्मृति के उपस्थान से चित्त स्वतः ही समाहित होने लगता है, और इस प्रकार समाहित चित्त से प्रज्ञाविवेक– अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति हो जाती है। फिर हर वस्तु को योगी यथार्थता से जान लेता है ! श्रद्धा का इतना बड़ा परिणाम निकलता है। इसलिये तुम सब श्रद्धायुक्त होकर डटकर साधना में लग जाओ। अरे ! मेरे से क्या शक्तिपात लोगे। वे सर्वशक्तिमान प्रभु जी नैपाल में बैठे-बैठे अपने बच्चों पर शक्तिपात करते रहते हैं। उनके स्वरूप के सामने बैठकर ध्यान करने से कुदरती शक्तिपात होता है।

आज एक पुराना सत्संगी मिला था। वह कह रहा था आप के सिद्ध गुफा में बैठने पर मुझ में अपने आप नाद प्रकट हो गया। वह नादानुसंधान का अभ्यासी था। उसे नाद सुनाई दे गया होगा। श्री प्रभु जी गुफा में रहा करते थे। उनके दिव्य परमाणुओं से वह परिपुरित है। इसलिये जो वहाँ जाकर ध्यान में बैठता है, उसका ध्यान अवश्य लगता है। मेरे मन में 'गधोचन' की कथा को सुनकर **'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एवं सः'** ये भगवान के वचन बराबर घूमते रहे। कोई उसे गोपाल कहे, राम कहे, अल्लाताला कहे, चिन्चिढिंग कहे कुछ भी नाम रूप से माने भगवान भक्त की श्रद्धानुसार उसी रूप में प्राप्त होते हैं। श्रद्धा ही मनुष्य को योगी बनाती है और परमात्मा तक पहुँचा देती है। इसलिये तुम सब संयतेन्द्रिय होकर, श्रद्धायुक्त होकर अपने को साधना में लगाओ। यह प्रयाग क्षेत्र अक्षय क्षेत्र है। यहाँ पर किया गया जप तप अनन्त गुणा फल देने वाला होता है। कल्याण धन श्री प्रभु जी के चरणों में समर्पण रखते हुये अपनी साधना को बढ़ाओगे, कल्याण का रास्ता खुलता चला जायेगा।

※※※

योग से ही कल्याण !

आचार्य (डा०) दासलाल शर्मा

अनादिकाल से ही हमारे ऋषिमुनि योग पर विशेष ध्यान देते आये हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि योगशास्त्र मानवमात्र के लिए कितना महत्वपूर्ण और उपयोगी है। सर्वत्र योग का महत्त्व एकमत से स्वीकार किया गया है। श्रुति, स्मृति, पुराण, उपनिषद, न्याय, वैशेषिक सांख्य और वेदान्तदर्शन आदि सभी में योग की महत्ता का वर्णन है। गीता का तो कोई अध्याय ही ऐसा नहीं है जिसमें योग के किसी न किसी सिद्धान्त का वर्णन न किया गया हो। यही कारण है कि भगवान श्रीकृष्ण महायोगेश्वर के रूप में जगत् प्रसिद्ध है। महर्षि पातंजलि ने योगशास्त्र को सांसारिक वैज्ञानिकता प्रदान कर इसे सर्वसुलभ बनाया, जिसके परिणामस्वरूप इसके यमनियमादि अष्टांग योग नास्तिकों को भी उतने ही मूल्यवान प्रतीत होते है जितने कि आस्तिकों को। यह योग शास्त्र ही है जिसका अक्षरशः अनुकरण करके जैन और बौद्ध सम्प्रदायों ने अपने लिए सुदृढ़ आधार निर्माण किया। योगशास्त्र ने दर्शनशास्त्र की कठिन समस्याओं को वास्तव में सुलझाकर सरल सुलभ कर दिया है। पतंजलि योग दर्शन में न केवल चित्रवृत्ति के निरोध के उपाय, समाधि के प्रकार तथा विभिन्न योग विभूतियों का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है बल्कि मनोविज्ञान के कई गूढ़ रहस्यों को भी उसमें अनावृत्त किया है।

पातंजलि योगसूत्रों में जिस नियम का मुख्यतः प्रतिपादन किया गया है, वह है– **'चित्तवृत्ति निरोध'** अर्थात् अन्य विषयों से चित्त को हटाकर एक ही विषय में केन्द्रित करना। मन को एकाग्र करने की शक्ति निरन्तर अभ्यास और सांसारिक भोगों से मुख मोड़ने से प्राप्त होती है। सूत्र २३ और ३९ में ऋषिवर कहते हैं कि ईश्वर प्रणिधान से अथवा जिस विषय में अपनी रुचि हो उसी पर ध्यान केन्द्रित करने से–**यथाभिमतध्यानाद्वा**–चित्त को स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है। योग सूत्रों में जो लक्ष्य सामने रखा गया है वह है दृष्टा का अर्थात् आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थान। जिससे चित्त सांसारिक भोगों से विरत होकर निज स्वरूप में स्थिर हो जाता है। चित्तवृत्तियों का यह निरोध किसी भी समुदाय या धर्म की शिक्षा के विरुद्ध नहीं है। ऐसा स्वरूपावस्थान सांख्य और अद्वैतसिद्धान्त का ही प्रतिपाद्य है। योग सूत्रों के दो भाग हैं– हठयोग और राजयोग। हठयोग में आसनों की शिक्षा है– आसनों से आरोग्य और बल प्राप्त होता है। आसनों की रचना ऐसी है कि, इससे शरीर के अंग प्रत्यंग का व्यायाम हो जाये। जैसे मयूरासन से सब अंतड़ियों का व्यायाम हो जाता है, जिससे अपच और वायु की शिकायत नहीं रहती। प्राणायाम से प्राणवायु मिलती है और अशुद्ध वायु निकल जाती है। हठयोग में मिर्च-मसालेदार भोजन करने की मनाही है। राजस एवं तामस आहार का सर्वथा त्याग है। क्योंकि मसालेदार पदार्थों का भक्षण करने वाला राजस मनुष्य

क्रोधी, लालची और कामी हो जाता है और तामस आहार ग्रहण करने वाला मनुष्य आलसी, दीर्घसूत्री एवं प्रमादी होता है। हठयोग में जिसे सात्विक आहार कहा है उससे सद्‌गुणों की वृद्धि होती है और आरोग्य तथा बल बढ़ता है, लौकिक और पारलौकिक योग शिक्षा में इसीलिए आहार-विहार के नियमों का कड़ाई से पालन आवश्यक बताया गया है। **'युक्ताहार विहार'** के लिए श्रीमद्‌भगवद् गीता में भी स्पष्ट निर्देश है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन रहे, तभी जीवन में सफलता मिल सकती है।

दुर्भाग्य से आज भौतिक सफलता को ही वास्तविक सफलता माना-समझा जाता है। संत हो या ग्रहस्थ उसकी भौतिक उपलब्धियाँ ही उसकी महानता-सफलता-सम्पन्नता के मापदण्ड बन गये हैं। आधुनिक सभ्यता की सब बुराइयों के मूल में बस एक ही कारण विद्यमान है और वह है योगपूर्ण जीवन का अभाव। योग को 'योगा' कहकर उस पर चर्चा करके गौरवान्वित अनुभव करने वालों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। किन्तु योगपूर्ण जीवन जीने का हृदय से प्रयत्न करने वाले कितने हैं ? यह कहना उचित न होगा कि योगशिक्षा केवल योगियों के लिए ही है, जन सामान्य के लिए नहीं। 'योगी' शब्द से अत्यन्त व्यापक अर्थ लिया जाय तो जो कोई संसार में सदाचार से रहकर जीवन को सफल करना चाहता है, वह योगी है। सभी धर्म यह बतलाते हैं कि सदाचार ही स्वर्ग का सुगम मार्ग है। योग में सदाचार का अर्थ केवल सामाजिक शिष्टाचार नहीं है बल्कि उसमें आहार विहार का नियम भी है। नियमबद्ध रहकर ही यह समूचा ब्रह्माण्ड अनन्त समय से गतिमय है। इसी प्रकार हम सब भी योग शिक्षा का अनुशीलन कर अपने जीवन को लाभयुक्त बना सकते हैं। योगाभ्यास से शून्य होने के कारण ही आज अपना समाज पूर्वजों द्वारा स्थापित आदर्शों को खो रहा है। नैतिक धीरता और धर्म वीरता आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है, जो केवल यौगिक जीवन अपनाने से ही प्राप्त हो सकते हैं।

✻✻✻

जो ईश्वर में नित्य डूबा रहता है, उसकी प्रेमभक्ति कभी नहीं सूखती। परंतु दो-एक दिन की भक्ति से ही जो संतुष्ट तथा निश्चिन्त रहता है, सीधे पर रखे हुए रिसते घड़े के जल के समान वह भक्ति दो दिन बाद ही सूख जाती है।

गुरुभाव की साधना

प्रो. आचार्य चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली

साधक और परमसत्ता के बीच में संसारी भाव ने आकर उसकी बुद्धि को विपरीत बना डाला है। वह संसारी भाव से ही अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं और लक्ष्यों को निश्चित करता है, और परमसत्ता के बारे में उसी भाव के आधार पर सोच पाता है। उसका दुनियादारी का भाव ही उसे सुख-दुःख के चक्र में घुमाता रहता है। इस प्रकार के भाव को दूर करने का और कोई उपाय नहीं है, सिर्फ एक ही उपाय है-'गुरुभक्ति'। कोरे ज्ञान से या योग की आसन बन्ध मुद्राओं आदि क्रियाओं से साधक का अहं ही बढ़ता है। यह 'अहं' जितना-जितना बढ़ता है, उतनी ही मात्रा में साधक परमसत्ता से दूर होता चला जाता है तथा विनाशी, विकारी, अपावन, पाप-पुण्य के मिले-जुले इस संसार के झमेले से कभी अलग नहीं हो पाता। सद्गुरु सत्ता के महाप्रकाश में प्रवेश करने पर ही संसारी बुद्धि नष्ट होती है और उसमें विवेक बुद्धि, शुद्ध-विद्या का प्रकाश होता है जिससे संसारी छल-फरेब, पाखण्ड और गुल्डम से साधक का पीछा छूट पाता है। अन्यथा जन्म जन्मान्तर तक साधक आस्तिकता, धार्मिकता और आध्यात्मिकता के नाम पर अपनी प्रापंचिक वृत्तियों के प्रवाह में ही बहता रहता है। इसीलिए विज्ञानी महापुरुषों ने बार-बार सावधान किया कि **'गुरुभक्तिः सदाकार्या भूयसे श्रेयसे नरे'** अपना परम कल्याण चाहने वाले साधक को सर्वावस्था तथा सर्वकाल में गुरु की भक्ति सदा करनी चाहिये। सिद्धकोटि में पहुँचने पर भी उसे नहीं छोड़ना चाहिये। नहीं तो माया के अन्दर का काल चक्र और त्रिगुण उसे पुनः इस नश्वर दुःखालय जगत के आवागमन में घसीटकर कोल्हू के बैल की तरह कर्मभोग और संसार-चक्र में लगा देंगे। एक बार जीती हुई बाजी हाथ से निकल गयी तो फिर पता नहीं दुबारा बाजी खेलने का मौका मिले न मिले ? इसलिये साधना के मार्ग में छल, फरेब और पाखण्ड वाली संसारी बुद्धि से सफलता तो दूर की बात है, जो कुछ अपने पास अर्जित है वह भी नहीं रह पाता। बिना भाव, भक्ति और प्रेम के दिव्य शक्तियों का विकास नहीं होता। प्रेम में कपट, दम्भ और माया बाधक है। जो जितना सरल, पवित्र, शुद्ध और निरहंकार एवं निष्काम, निष्प्रपंच हो जाता है उतनी ही तीव्रता और शीघ्रता से योगमार्ग में आगे बढ़ पाता है। यह संसारी भाव अपनी वृत्तियों, गुणों, इच्छाओं, वासनाओं तथा इन्द्रियों की बहिर्मुखी धारा का ही परिणाम है। यदि सद्गुरु कृपा का साधक अपने को पात्र बना सके तो संसार भी फिर भगवद्रूप, चिदानन्दमय प्रतीत होने लगता है। यह तभी है जब बालक का भाव साधक का सदा बना रहे। बालक निर्लिप्त सरल तथा माँ पर पूर्ण निर्भर रहता है। प्रेम के लिये बालक बनना पड़ेगा। क्योंकि **'सूधो सनेह को मारग है वहाँ नेक सयानप बांक नहीं'**। जहाँ चतुराई है, सयानापन है, प्रपंच है वहाँ माया है, जगत है और जीवन के आनन्द का अभाव है वहाँ पारमार्थिक दिव्यता का सर्वथा अभाव है। साधक और अहंकार एक साथ उसी प्रकार नहीं रह सकते जैसे सूर्य और अन्धकार।

सद्गुरु सेवा और भक्ति महाप्रकाश के लोक को प्राप्त करने का सरल और सीधा उपाय है। धर्म का संविधान बनाने वाले महाराज मनु का वचन है–

इमं लोकं मातृभक्तया, पितृभक्तया तु मध्यमम्।
गुरु सुश्रूषयात्वैवं ब्रह्म लोकः समश्नुते।।

अर्थात् मातृभक्ति से यह लोक, पितृ भक्ति से अन्तरिक्ष लोक और गुरुभक्ति से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। अन्य शास्त्रों में भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि मिलती है।

गुरुभक्तया यथा देवि प्राप्यन्ते सर्वसिद्धयः।
यज्ञदान तपस्तीर्थं व्रतार्थैर्न तथा प्रिये।।
श्री गुरौ निश्चला भक्तिः वर्धते हि यथा यथा।
तथा तथास्य विज्ञानं वर्धते कुलनायके।।

भगवान सदाशिव जगदम्बा पार्वती से कहते हैं कि हे देवि! गुरु भक्ति से जितनी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं उतनी यज्ञ करने दान, तप, तीर्थ तथा व्रतादि करने से भी प्राप्त नहीं होती। सद्गुरु की जितनी-जितनी निर्भरा और निश्चल भक्ति बढ़ती जाती है, उतनी-उतनी तत्व ज्ञान में वृद्धि होती जाती है।

गुरुभक्ति का महान फल अवश्य है पर किसके लिए है ? जो उनमें मनुष्य बुद्धि और मरणधर्मा, नश्वर हाड़-माँस का पुतला या अपनी कामनाओं की पूर्ति का उन्हें साधन मात्र समझ कर हर समय अपनी संसारी इच्छाओं की पूर्ति की तिकड़म में अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करने में लगा रहता है। कभी उनमें दिव्यभाव का चिन्तन नहीं करता। सोचना चाहिए जो सद्गुरु उस परमसत्ता का दर्शन कराने की क्षमता रखता है वह स्वयं मरणशील कैसे हो सकता है ? उसका शरीर रहे या न रहे उसकी सद्गुरुसत्ता में कोई अन्तर नहीं आता। बल्कि जब तक वह शरीर के बन्धन में रहता है तब तक लोकधर्मों के निर्वाह के बन्धन के कारण उसकी शक्ति के प्रवाह में अनेकों प्रकार के अवरोधक हो सकते हैं। शरीर से अलग होने पर वह स्वतंत्र भाव से अपने ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित होकर शिष्य के स्मरणमात्र से उसके हृदय में ज्ञान रूप से या भाव रूप से स्फुरित होकर उसका मार्ग प्रशस्त करते रहते हैं। भाव के अनुसार भक्ति होती है और भक्ति के अनुसार उसी स्तर का प्रेम होता है! प्रेम के स्तर के अनुसार ही अन्दर का प्रकाशपथ तथा आनन्द रस का झरना बहा करता है। इसीलिए सद्गुरु का होना जरूरी है। सद्गुरु वह होता है जो सोई हुई शक्ति को जगा दे। जिसके नाम के स्मरण मात्र से शिष्य के अन्दर अष्टविध सात्विक भावों का स्पन्दन होने लगे। स्वेद, कम्प, गदगद कण्ठ, रोमांच, स्तब्धता, अश्रुपात, नेत्र विक्रिया, श्वासोच्छ्वास की तीव्र या अत्यन्त अवरुद्धगति–ये सात्विक भाव गुरुप्रेम की हिलोरें हैं जो इन लक्षणों से अनुमेय होते हैं। सद्गुरु के समीप जाने पर अन्दर की चिदग्नि दीप्त होने लगती है। प्राणों का प्रवाह ऊर्ध्वमुखी होने लगता है। ऐसे गुरुदेव महान पुण्यों के फल बिना नहीं मिलते। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि **'गुरुभक्ति सुदुर्लभा'** अर्थात् गुरु भक्ति सकल कल्याण की मूल है। किन्तु गुरुभक्ति होना बहुत अधिक कठिन बात है। यह कब होगी ?

इसका संकेत यत्र तत्र शास्त्रों ने कर दिया है-**'यस्य देवे पराभक्ति यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते: कथिता: ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।'** अर्थात् जिसकी माता-पिता, अतिथि, आचार्य तथा सूर्यादि प्रत्यक्ष देवो में निश्चल विश्वास और श्रद्धामयी भक्ति हो, वह भी साधारण प्रकार की भक्ति नहीं अपितु पराकाष्ठा युक्त **'पराभक्ति'** है। जैसी भक्ति अपने इष्ट में हो वैसी ही गुरुदेव में पराभक्ति हो तभी ऐसे साधक के हृदय में तत्वज्ञान का प्रकाश हो पाता है।

सद्गुरु में नित्य चेतन, आनन्द मय, ज्ञान स्वरूप महाप्रकाश रूप सर्वसमर्थ का भाव परिपुष्ट हुए बिना पराभक्ति का प्रारम्भ नहीं हो पाता। जो केवल शास्त्रज्ञान देने की सामर्थ्य रखता है, वह शिक्षक हो सकता है, सद्गुरु नहीं। ऐसा ज्ञान अहंकार को और दृढ़ कर परमार्थ मार्ग में पहाड़ बनकर खड़ा हो जाता है। जो सत्ता प्रत्येक कण-कण में व्याप्त है वही शिष्य के कल्याण के लिए शरीर धारण कर अथवा अशरीरी ईश्वर या देव रूप में गुरुतत्वात्मक बन सद्गुरु के रूप में अवतरित होती है। उनकी कृपा के आधार में शिष्य की पात्रता और गुरु की प्रसन्नता दोनों का विशेष महत्व है। सद्गुरु की स्नेहामृत मयी दृष्टि शिष्य को स्वर्ग का सुख ब्याज में लुटा लेती है। **हंस: सोऽह** की अखण्ड अमृतमयी अनाहत ध्वनि की लोरियाँ सुनाकर माता की भाँति सद्गुरुदेव की करुणा संस्कार के महारण्य में भटकते जीव को समाधि की चिरशान्ति की नींद में सुला देती है। सद्गुरु की कृपा दृष्टि जीव को ईश्वर के समान बना देती है। उन सद्गुरुदेव की महिमा को जानने का साधन केवल गुरु कृपा ही है। शास्त्रज्ञान या बुद्धि बल से उन्हें कोई कैसे समझ सकता है। जब तक हृदय में वे कृपा की शक्ति द्वारा श्रद्धामय भाव का उन्मेश न करें तब तक उन्हें हाड़ माँस का पुतला ही बुद्धि मानती रहती है। हृदय में जैसा भाव होता है, तदनुसार ही साधना का फल मिलता है। चिन्मय भाव हुए बिना दु:ख, शोक, मोह और अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती **'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।।'** हृदय में ही भाव की स्थिति होती है, बुद्धि में नहीं होती। भगवान का आत्म प्रकाश दहराकाश में ही होता है। यह दहराकाश हृदय भूमि है। यही कालातीत सत्ता का वास है। शुद्ध प्रेम का यही स्थान है। त्रिगुणातीत अवस्था भाव राज्य में ही आती है। जब राग से भाव, भाव से अनुराग, अनुराग से प्रेम, प्रेम से परम प्रेमरूपी भक्ति महाभाव के रूप में आह्लादित होती है। जो रसरूप श्री कृष्ण या सिद्धगुरुतत्व का महाप्रकाश हृदय में ही होता है। **'रसो वै स:'** की सार्थकता तभी अनुभव में आती है जब अमृतरस का अनवरत वर्षण होता है। धर्ममेघसमाधि की उपलब्धियोगी को इसी भूमिका पर होती है। परमप्रेमा भक्ति नाद भूमि में ही इस क्षेत्र में आविर्भूत होती है।

जब शिष्य में अपनी इच्छा की प्रधानता होती है तो उस समय गुरुभक्ति नहीं जगती अपितु अपनी इच्छा की गुलामी की भक्ति जगती है। भक्ति के आचार्यों ने उत्तम भक्ति उसे कहा है जहाँ **'तत्सुखे सुखित्वम्'** का भाव प्रधान होता है। मेरे इष्ट गुरुदेव को जिस तरह भी सुख मिले वही मुझे अभीष्ट है। उन्हें सुख देने के लिए मुझे कितना भी दु:ख उठाना पड़े, उसकी कुछ परवाह नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है-

तुमको अपना बना बैठे, जो होगा देखा जायगा।
गुरुवर पर दिल लुटा बैठे जो होगा देखा जायगा।।

इस स्थिति में कर्तव्य अकर्तव्य, धर्म अधर्म का विचार नहीं होता। अपने इष्ट की इच्छा की पूर्ति बिना नानुनच किये प्रसन्नता से करने में सच्चा सुख मिलता है। शिष्य को अपने सुख की इच्छा भी नहीं होती। बस, यही इच्छा रहती है कि मेरे इष्ट कैसे ही प्रसन्न हों। उनकी प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता मानकर प्रेमाभक्ति प्रतिक्षण वर्धित होती जाती है। इस शुद्धाभक्ति से परमप्रेम का रस प्रकट हो जाता है। रस के द्वारा सिद्धावस्था आती है।

सद्गुरु की कृपा द्वारा साधक के अन्दर का अभाव, भाव में बदल जाता है। अज्ञान का नाश होने पर जीव की जब सभी मलिनता नष्ट हो जाती है तब शुद्ध विद्या प्रकट होने पर भाव का प्रकाश होता है। भाव के प्रकाश से शिष्य अपने स्वभाव में स्थित होकर अपने गुण दोष ठीक-ठीक समझ कर गुरुदेव से प्रार्थना करता है कि वे अपने सर्वमय भाव से मेरे हृदय को भर दें। कामादि विकार दूर कर इसे निजधाम स्वीकार कर लें। शिष्य की सिद्धयोग की यात्रा गुरुभाव का विकास करते रहने से अपने लक्ष्य तक पहुँच जाती है। साधना करते-करते शिष्य के स्वभाव में गुरुभाव पूर्ण-रूपेण समा जाता है। इस परम प्रेम में गुरुदेव ही शिष्य के अन्दर स्थित होकर स्वयं साधना करते हैं। शिष्य साक्षी और दृष्टा बना उनकी लीला देखता चलता है। यह शान्त भाव की स्थिति किसी-किसी साधक की होती है। भक्ति के प्रमुख चार भाव हैं, जिन्हें लेकर शिष्य गुरुभक्ति करता है। ये हैं- दास्य, सख्य, वात्सल्य और चौथा माधुर्य भाव। पहले में साधक अपने इष्ट को बड़ा और स्वयं को छोटा मानकर सेवा करता है। उसकी सेवा ही भजन होता है। सखा भाव में इष्ट के अन्तरंग में साधक का प्रवेश होता है। वह इष्ट के साथ हंसी ठट्ठा कर उन्हें सुख पहुँचाता है। सख्य भाव सैंकड़ों प्रकार का होता है। वात्सल्यभाव में इष्ट में माता-पिता का भाव होता है। वात्सल्य भाव भी विभिन्न सम्बन्धों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का है। उसके रस भी अलग-अलग प्रकार के हैं। माधुर्यभाव तथा कान्ताभाव में साधक स्वयं को अपने इष्ट के सुख का आश्रय मानकर निष्काम रूप से अपने इष्ट की सेवा और भक्ति करता है। योगदर्शन में कहा गया है 'तीव्र संवेगानाम् आसन्नः।' अर्थात् भाव और संवेग में तीव्रता (व्याकुलता) जितनी अधिक होगी उतनी शीघ्र समाधि सिद्धि होगी। भाव संवेग का रूप धारण कर प्रेमाभक्ति बन जाता है। सिद्धयोग की साधना भाव और संवेग की साधना है जो हृदय क्षेत्र में गुरुभाव के विकास द्वारा होती है। ***

इन्द्रियों को वश में रखना, जीभ को काबू में रखना, सत्कार्य में दृढ़संकल्प रहना और भगवान् की इच्छापर खुश रहना, चाहे वह तुम्हारे प्रतिकूल ही हो, बस, यही सच्ची शूरता है।

मंजुला ने जानी गुरुमंत्र जप की महिमा

लेखक–राजेश कुमार श्रीवास्तव

गतांक से आगे–

सन् १९९० की ही घटना है मंजुला के बड़े लड़के को कोई दवा रियेक्शन कर गई। बस्ती के लोग मंजुला के साथ थे वे तुरन्त उसे बड़े अस्पताल ले गये। बचने की कोई उम्मीद नहीं रही। डाक्टरों ने जबाव दे दिया था। वे संघर्ष अवश्य कर रहे थे। किन्तु उनकी आशाऐं सन्तोषजनक नहीं थीं। अस्पताल में रोना-पीटना शुरू हो गया। मंजुला तो जैसे बिल्कुल जड़वत हो गई। ममता की असीम वेदना से फड़फड़ाती मंजुला ने आराध्यदेव गुरुदेव जी को श्री प्रभुजी को बहुत याद किया। उसे पूर्ण विश्वास था अवश्य ही श्री प्रभुजी की तेज की कोई किरण उसके लड़के के लिए जीवन लेकर आयेगी। सभी को अस्पताल में ही छोड़ कर वह भागी चली आई। सर्वशक्तिमान श्री प्रभुजी के स्वरूप के आगे अपनी झोली फैला दी। हे मेरे प्रभु ! झोली भर दो चाहे खाली कर दो, सब आप की इच्छा पर है। आपका बच्चा है मुझे कुछ नहीं कहना है। लगभग एक घण्टे बाद समाचार मिला कि लड़का बोलने लगा है। श्री प्रभुजी की शीघ्र कृपा को देखकर मंजुला की आँखों से आंसू बह चले। जल्दी ही लड़का पूर्ण स्वस्थ हो गया। मंजुला ने रामायण बोली थी लेकिन उसके पास पैसों का प्रबन्ध नहीं था। उसके भाई ने आर्थिक सहायता दी तब रामायण हो सकी। भाई ने कुछ दिन बाद उसके लड़के को काम दिला दिया। वह मन लगाकर काम करता रहा और अच्छे पैसे भी कमाने लगा।

अभी कुछ ही दिन चैन से व्यतीत हो सके कि पुनः लड़के के कुछ क्लिष्ट संस्कार उदय हो गये। वह गलत लड़कों की संगति में पड़ गया। उसके भविष्य को लेकर मंजुला भारी चिन्ता में पड़ गई। मंजुला अहर्निश श्री प्रभुजी के स्वरूप को निहारती रहती और मन ही मन प्रार्थना करती रहती। वे भक्त-वत्सल तुरन्त मंजुला की आर्त पुकार को सुन लेते। एक दिन गुरुदेव स्वप्न में आकर बोले–**''अपने लड़के को धौलपुर भेज दे नहीं तो तू पछतायेगी।''** मंजुला का देवर अपने परिवार के साथ धौलपुर में ही रह रहा था। मंजुला ने गुरुदेव की आज्ञा का पालन किया उसने तुरन्त अपने लड़के को धौलपुर भेज दिया अलग कमरा दिला दिया वहीं वह काम से लग गया था। कुछ दिन बाद उसकी शादी वाले आये। जिस घर से शादी होनी थी उस घर में कुछ मंजुला के विरोधी थे। मंजुला का देवर पहले से ही सदा उसका विरोधी रहा। शादी अच्छे सम्पन्न परिवार से हो रही थी यह बात देवर को नहीं सुहाई। दोनों पक्षों के विरोधियों ने मिलकर नीचा दिखाने की दृष्टि से षड्यन्त्र रच दिया। मंजुला के पास धमकी भेजी गई। लड़का यदि घोड़ी पर चढ़ा तो गोली मार दी जायेगी। मंजुला के घर में यह पहली शादी हो रही थी। घर में खुशी का माहौल बना हुआ था। शादी की तैयारियाँ हो रहीं थीं ऐसे में दुष्टों की धमकी से मंजुला के होश उड़ गये। इस बारे में पति

से कहा किन्तु वह अपने छोटे भाई के बारे में कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं था। परम् प्रभु श्री दादा गुरुदेवजी की दया के सिवा कोई सहारा नहीं था।

दैवीय प्रवृत्ति के लोग आसुरी प्रकृति के चंगुल में फंस जाते हैं तो उनसे बच निकलना बहुत ही मुश्किल होता है। उनके अत्याचारों से उनकी आत्मा चीत्कार करने लगती है असहाय होकर ये लोग तब सर्वशक्तिमान प्रभु को ही पुकारते हैं। श्री प्रभुजी तत्काल उनकी रक्षार्थ, ऐसे प्रकट हो जाते हैं जैसे द्रोपदी को दुस्सासन से, प्रहलाद् को उसके दुष्ट पिता से, गज को ग्राह से बचाने के लिए उनकी आर्त पुकार सुनते ही वे दौड़े चले आये। और उन्हें शत्रुओं के चंगुल से मुक्त किया। मंजुला पुकार रही थी, उनको आना ही था। पूज्य श्री गुरुदेव भगवान स्वप्न में आकर मंजुला से कहने लगे।

"मुनियाँ ! तू क्यों दु:खी है हम सदा तेरे साथ हैं हम देखते हैं कौन हमारे बच्चे को गोली मारता है। तू बिल्कुल चिन्ता मत कर, रात्रि ९ बजे के बाजे हैं मैं ८ बजे ही तेरे घर पर पहुँच जाऊँगा। कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा।"

मंजुला के चिंतित मन को पूज्य गुरुदेव जी के शीतल वचनों से बड़ी राहत और शक्ति प्राप्त हुई। गुरुदेव श्री के वचन अक्षरश: सत्य घटित हुये। बिगाड़ने वालों ने कोशिशें लाख की किन्तु वे किसी प्रकार भी सफल नहीं हो सके। दुश्मनों को पुन: नीचा देखना पड़ा उनकी जलन और बढ़ गई।

प्रारब्धानुसार जो होना होता है वह अवश्य घटित होकर रहता है। जिसका जिसके साथ संस्कार होता है उसे वही प्राप्त होता है। शादी तो कुशलपूर्वक हो गई। किन्तु लड़के को स्त्रीधन के रूप में खोटाधन ही हाथ लगा। बड़ी धूमधाम के साथ बहू आई किन्तु वह बीमार और दिमाग से कुछ पागल सी थी। पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाने में वह बिल्कुल सक्षम नहीं थी। मंजुला का दिल बुझ गया किन्तु शत्रुपक्ष की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। देवर ने खूब बहू की हंसी बनाई। वह लोगों को बुला-बुला कर लाता सबसे कहता बहू देख आओ बहुत सुन्दर आई है।

मंजुला ने सब बर्दाश्त किया। उसने कहा सब भाग्य की बात है अब जैसी आ गई सब ठीक है उसने बहू का इलाज करवाया। रोग तो ठीक हो गया किन्तु पागलपन में कोई फायदा नहीं हुआ। बहुत इलाज के बाद भी कोई लाभ नहीं मिला।

धौलपुर में देवर के लड़के की शादी थी मंजुला भी शादी में गई। थोड़ी दूर पर ही मंजुला के लड़का-बहू रहते थे। मंजुला ने वहाँ जाने की इच्छा की तो देवर ने उपहास करते हुये कहा-"हाँ, जरूर जाओ, भूत खेल रहे होंगे।" ऐसा कहकर उसने बहू की मजाक बनाई। यह सुनकर मंजुला के हृदय में तीर से चुभ गये। दुष्टों को दूसरों का हृदय दुखाने में कितना आनन्द आता है जैसे कोई बहुमूल्य निधि मिल गई हो। ऐसे ही लोगों के लिए सन्त तुलसीदास जी कहते हैं-

खलन्ह हृदय अति ताप बिशेषी, जरहिं सदा पर संपति देखी।
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई, हरषहिं मनहु परनिधि पाई।।

'सन्तोष धन' की यथार्थ व्याख्या है कि जो कुछ हमें ईश कृपा से सहज ही प्राप्त हो रहा है उसी से संतुष्ट हो जायें। किसी मनोवांछित कार्यसिद्धि की असफलता से मन में व्यर्थ का उद्वेग या चिन्ता पैदा नहीं करनी चाहिए। कार्यसिद्धि हेतु प्रयास अवश्य करना चाहिए। किन्तु असफलता पर बहुत अधिक मन को दुःखी करना अच्छी बात नहीं है।

मंजुला ने पागल बहू को ही स्वीकार कर लिया था। किन्तु कोई उसकी हँसी उड़ाता था तो उसे बहुत दुःख होता था। हँसी उड़ाने वालों ने कोई कसर नहीं छोड़ी। मंजुला निरन्तर गुरुमंत्र का जाप किया करती थी। गुरुमंत्र के नियमित रूप से जपते रहने से तथा आनन्दकन्द महाप्रभुजी के चरण-कमलों का सदा चिन्तन करने से अनेक विघ्नों का नाश हो जाता है। मंजुला धौलपुर में एक शिवालय में नित्य आया करती। श्री महाप्रभु जी व गुरुदेव जी के लघु स्वरूप हमेशा अपने पास रखती थी। वहाँ वह शिवजी के समक्ष आनन्दकन्द महाप्रभुजी श्रीरामलाल जी की भावना करके फूट-फूट कर रोती हुई कहा करती है प्रभुजी! अब तो बहुत हो गया अब और हँसी मत कराओ। उन नेपालपति करुणानिधि जी ने मंजुला पर बड़ी करुणा दिखलायी।

आर्तपुकार सुनी भक्तन की,
दौड़े तजि नैपाल प्रभुजी।
जो प्रभु दीन दयाल न होते,
क्यों मिलते कृपालु गुरुजी।

उसी समय से बहु की मानसिक स्थिति धीरे-धीरे सुधरने लगी। दो-तीन महीने में वह बहुत ठीक हो गई। मौहल्ले भर के लिए यह एक आश्चर्य की बात हो गई। लड़के का विवाह अमीर घर से हुआ था वे लोग सभी अपनी लड़की में विलक्षण परिवर्तन देखकर बहुत प्रसन्न थे। देवर को मंजुला की यह खुशी बर्दाश्त नहीं हो सकी। मंजुला कहती मेरा देवर मेरा हमेशा का दुश्मन रहा। उसने हमेशा मेरा अनिष्ट चाहा। जब अपनी सामर्थ्य जबाव दे गई तब उसने तन्त्र का सहारा लिया। उसने मंजुला के लड़के पर घात रखवा दी। लड़के का स्वास्थ्य अचानक बिगड़ने लगा। वह दिन-प्रतिदिन पीला पड़ता जा रहा था। मंजुला ने बहुत इलाज करवाया। वह अब बहुत दुःखी हो चली थी कष्ट-आपदाओं को जैसे उसकी ही प्रतीक्षा रहती थी। लड़के का सब खून सूख गया कंकाल मात्र रह गया। भूख लगती नहीं थी खाया-पीया कुछ जाता नहीं था।

मंजुला बतलाती है-''मैंने तो सब कुछ प्रभुजी पर छोड़ दिया था। मुझे भरोसा था उन पर जब अब तक इतने संकटों से उबार लिया तो अब क्यों नहीं कृपा करेंगे ?'' एक दिन मंजुला मंत्रजाप करते-करते सो गई। मंजुला ने स्वप्न में देखा कि हिमालय के सुन्दर चित्ताकर्षक, मनोरम स्थानों पर घूम रही है। एक सुन्दर विशाल शिलाखण्ड में स्थित एक चौड़ी गुफा में उसने एक परम् तेजस्वी

कोपीनधारी महापुरुष को देखा। उनके चारों ओर अद्भुत तेज व्याप्त था उनके निर्मल नेत्र बहुत ही प्यारे लग रहे थे। मन में ऐसा विश्वास पैदा हुआ कि यही श्री प्रभुजी हैं। उसने झट आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया। वे तुरन्त बोले–

–बेटी ! तेरे लड़के पर बहुत भारी कष्ट है।

–हे प्रभुजी ! आप ही निर्बल के बल राम हैं मुझे आप पर पूर्ण भरोसा है आप जो करोगे अच्छा ही करोगे।

–सुनो बेटी ! प्रारब्धवश दुश्मन ऐसे गहरा रहे हैं जैसे सावन की घटायें।

–लेकिन प्रभुजी ! दुश्मन आपके रहते कैसे अनिष्ट कर सकते हैं ?

–तू चिन्तामत कर बेटी, तेरे पुत्र की आयु पूरी है।

प्रारब्धानुसार मिलने वाला कष्ट मिलकर ही रहता है। लड़के को कष्ट तो बहुत था किन्तु जब से मंजुला ने स्वप्न में श्री प्रभु जी के दर्शन किये तभी से उसे अब बिल्कुल चिन्ता नहीं रही थी।

एक दिन तो लड़के की तबियत काफी बिगड़ गई। मंजुला के भाई ने तुरन्त आकर बताया। तुम्हारे लड़के की तबियत तो बहुत खराब है। फोन आया है रात के सात बज रहे थे। मंजुला ने तुरन्त गाड़ी पकड़ी। घनघोर वर्षा हो रही थी। १२ बजे रात को स्टेशन पर उतरी। वर्षा के कारण लाइन व्यवस्था बिगड़ने से चारों तरफ घोर अंधेरा छाया था। रास्ते कीचड़ में सने बहुत खराब थे। एक साईकिल वाले की मदद से वह किसी प्रकार अपने लड़के के मकान पर पहुँची।

मकान खुला पड़ा था। अंधेरे में लड़का पड़ा-पड़ा बुरी तरह कराह रहा था। यह सब मंजुला ने गुरुदेवजी की कृपा से स्वप्न में पहले ही देख लिया था। मंजुला ने डाक्टरों को दिखलाया जब कोई लाभ नहीं हुआ तो मन को कुछ शंका हुई। मंजुला के लड़के का एक दोस्त मंजुला के कहने पर एक सियाने के पास पूछताछ करने गया। उसने बताया–"इसको मंत्र दिये गये हैं सात महीने की मियाद है। केवल एक महीना शेष रह गया है।"

मंजुला ने किसी भी तांत्रिक का सहारा नहीं लिया। उसने खूब मंत्रजाप किया। श्रीप्रभु जी से बराबर लौ लगी रही। उसे विश्वास था चाहे कैसे भी तंत्र-मंत्र, टोने-टोटके हों श्री प्रभुजी के सामने नहीं चला करते। प्रारब्धानुसार थोड़ा कष्ट अवश्य हुआ किन्तु लड़का श्री प्रभुजी कृपा से बिल्कुल ठीक हो गया।

एक आत्मज्ञानी महान संतजो का कहना कि–**"काँटे चुभना नहीं छोड़ते तो फूल महकना थोड़े ही छोड़ देंगे।"** स्पष्ट है सज्जन पुरुष दुष्टों के दुर्व्यवहार से तंग आकर अपनी सज्जनता नहीं त्यागते। निःस्वार्थ सेवा की धारणायें जिस मानव के अन्दर उतरने लगती है वह श्री प्रभुजी का प्यारा बनता चला जाता है।

एक दिन मंजुला के देवर का लड़का छत से गिर पड़ा। मंजुला को जैसे ही खबर मिली वह

तुरन्त उसे देखने धौलपुर गई। छोटेपन में उसे डेढ़ वर्ष अपने पास रखा था। बड़ों की लड़ाई में बच्चों का क्या दोष ? वह उसे अपने साथ आगरा ले आई और अच्छा इलाज करवा कर उसकी खूब सेवा की।

किन्तु दुष्ट किसी का उपकार नहीं मानते। दूसरों के द्वारा की गई भलाई भी उनके चित्त को अशान्त करती है। वे सोचते हैं कि उसकी यह भलाई, हमें नीचा दिखाने के लिए ही की जा रही है। देवर अन्दर ही अन्दर जलता रहता वह मंजुला के सेवा भाव से बिल्कुल खुश नहीं हुआ। उसने पूरे महीने मंजुला को चैन से नहीं रहने दिया। वह अपने भाई को मंजुला के खिलाफ कान भरता रहता और व्यर्थ की कलह करा देता था।

उन्हीं दिनों जयपुर हाउस आगरा में पूज्य संत श्री आशाराम बापूजी का प्रवचन हुआ करता था। मन बहलाने के लिए वह सत्संग में चली जाती उसे बहुत आनन्द आता। उसके देवर को साधु संगति से बड़ी चिढ़ थी। मंजुला जब सत्संग में जाती तो वह मन ही मन बहुत चिढ़ता। एक दिन उसने मंजुला के पति को भड़का दिया। कहने लगा यह बाबाओं के चक्कर में पड़ गई है। आखिर वहाँ क्यों जाती है ? अब इसी बात को लेकर घर में बहुत कलेश हुआ। पति ने बहुत अपमान किया। अपमान और आत्मग्लानि की पीड़ित मंजुला दुःखी होकर आत्म हत्या करने की सोचने लगी। गृह कलेश का कष्ट मंजुला को अभी तक के सभी कष्टों से ज्यादा भयंकर महसूस होता था। कलेश में मन के अशान्त होने पर गुरुभक्ति भावना में भारी विघ्न पड़ता था।

नाथों के हे नाथ प्रभु
श्री रामलाल योगेश्वर
क्षण न लगावत काटत विपदा
तुम महादेव महेश्वर
त्रयताप के ज्वाल-जाल से
मुक्त करो सिद्धेश्वर
द्वन्द्व करो उर शीतल कर दो
गुरुदेव विश्वेश्वर

इस प्रकार महाप्रभुजी रामलालजी महाराज व गुरुदेवजी के चरण कमलों का स्मरण करती हुई अशान्त मन दुःखहता मंजुला सिसकियाँ भरती हुई सो गई। उसकी सम्वेदनाएँ आर्त भरी सच्ची पुकार के रूप में गुरुदेव जी के दयालु हृदय प्रदेश तक पहुँचीं। तुरन्त वे भक्तवत्सल मंजुला के स्वप्न में खिंचे चले आये। स्नेहपूर्वक मंजुला के सिर पर अपना कृपाकर रखते हुये वे आनन्द के धाम अपने पवित्र मुखारविन्द से बोले-

–मुनियाँ, तू अन्तर द्वन्द्व बिल्कुल त्याग दे। मानसिक वेदना अच्छी नहीं, इतना क्रोध क्यों करती है ? सहनशक्ति के साथ जीवन संघर्ष कर। क्रोध करेगी तो बिल्कुल खाली हो जायेगी।

–क्या करूं महाराजजी, अब बर्दाश्त नहीं होता।

–निर्द्वन्द रहकर सतत मंत्र जप और ध्यान साधना किया कर। श्री प्रभुजी के चरण कमल परम कल्याणकारी है उनका खूब चिन्तन किया कर, मुनियाँ, तू मेरा विश्वास कर सब बिल्कुल ठीक हो जायेगा। सारे विघ्न स्वयं भाग जायेंगे।

–कितना भी बचूँ महाराज जी किन्तु क्रोध हो ही जाता है।

–मुनियाँ ! राग-द्वेष के झमेलों में तुम्हें नहीं पड़ना चाहिए। नित्य गीता पाठ किया करो। श्री प्रभु जी की कृपा से तुम्हें पढ़ना आ जायेगा।

पूज्य गुरुदेव जी अपने हाथ से एक सुन्दर पात्र में लस्सी लेकर आये और बोले–

–ये ले मुनियाँ ये लस्सी है इसे पीजा। ठण्डी बर्फ वाली है। ऐसे ही अपने क्रोध को ठण्डा रखाकर।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

अर्थात्–क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है। मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है। स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्ति का नाश हो जाता है। और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

अर्थात–**'अन्तःकरण की प्रसन्नता'** होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है। प्रसन्नचित्त वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हट कर एक परमात्मा में ही भली भाँति स्थिर हो जाती है।

⁂

रामभक्तिपरक साहित्य का हनुमद्भक्तिपरक पर प्रभाव

डॉ० केशवराम शर्मा, दिल्ली

हनुमान की प्रतिष्ठा का मूल श्रीराम की सेवा तथा भक्ति है। जिस प्रकार अपनी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता के लिए वे श्री राम के ऋणी हैं, ठीक वैसी ही स्थिति हनुमद्भक्ति के विकास-क्रम की भी है। राम-भक्ति के प्रचार के साथ ही प्रायः उसी के अनुरूप हनुमद् भक्ति का प्रसार होता रहा है। आरम्भ में रामकाव्यों में ही हनुमद् भक्ति का बीजांकुरण होता है। रामकथा की जो विशिष्ट घटनाएँ आंजनेय के बुद्धिकौशल तथा पराक्रम से सम्बद्ध थीं, कालान्तर में उनके आधार पर स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन होने लगा। 'हनुमत जस लीला' (प्रहलाद दास पाठक 'जन'), 'हनुमतछब्बीसी' (मनियार सिंह), 'श्री हनुमत बाल चरित्र' (बृजलाल भट्ट), 'हनुमान नाटक' (उदय), 'हनुमन्नाटक' (हृदय राम), 'हनुमान दूत' (हरगोविन्द सिंह) आदि इसी प्रकार के प्रयास हैं।

हनुमद्भक्ति के समान ही हनुमान की प्रारम्भिक मूर्तियाँ भी श्रीराम के साथ उनके पार्षदरूप में बना करती थीं। गुप्त सम्राटों के शासनकाल में विभीषण शरणागति के अवसर पर निर्मित एक मूर्ति के मध्य में श्रीराम, उनके बाँयी ओर लक्ष्मण, दाहिनी ओर विभीषण, विभीषण की दाहिनी ओर हनुमान, तथा इन सब के नीचे कुछ वानर चित्रित हैं।[1] शनैः शनैः विशेष महत्त्व बढ़ने पर हनुमान की पृथक्शः मूर्तियाँ बनने लगीं और श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता की मूर्तियों के साथ भी इनकी स्थिति यथावत् बनी रही। प्रारम्भ में केवल श्रीराम पूजा के अंशरूप में हनुमान की पूजा होती थी। कालान्तर में इनके पृथक्शः मन्दिर बन जाने पर आंजनेय की पूजा-विधि में अनेक प्रकार के विधि-विधान विकसित होने लगे।

श्री राम की प्रायः सभी मूर्तियाँ माधुर्य तथा सौन्दर्य से ओत-प्रोत तथा उनके शील स्वभाव की अभिव्यंजक हैं। उन्हें किसी भी प्रकार के पुष्प, वस्त्र, नैवेद्य का समर्पण किसी भी दिन किया जा सकता है। दूसरी ओर शक्ति शौर्य तथा पराक्रम के देवता हनुमान की मूर्तियाँ प्रायः ओजगुण, समन्वित तथा भीमकाय होती हैं। सम्भवतः इनके पराक्रम की अभिव्यञ्जना के उद्देश्य से ही इन्हें रक्त पुष्प, रक्त चन्दन, रक्त वर्ण सिन्दूर तथा रक्तिम वस्त्र के ही लँगोट और उत्तरीय समर्पित किये जाते हैं।[2] सोमवार तथा शनिवार का मारुति पूजन के निमित्त विशेष महत्त्व है। अतिरिक्त, बृजलाल भट्ट के अनुसार शनिवार इनका जन्म दिन तथा सोमवार देवताओं से वरदान प्राप्ति का दिवस है।[3] आंजनेय के लिए नैवेद्य की भी विशेष व्यवस्था है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गुड़-धानी (भुने हुए गेहूँ तथा गुड़) का भोग लगाया जाता है, जबकि 'हनुमान-गढ़ी' (अयोध्या) 'बड़े हनुमानजी' (प्रयागराज), 'संकटमोचन' (काशी) इत्यादि प्रसिद्ध मन्दिरों में मारुति को विशेष रूप से बेसन के लड्डू समर्पित किये जाते हैं। स्व. पं० हनुमान शर्मा ने इनके नैवेद्य के सम्बन्ध में लिखा है–"प्रातः

---

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, पृष्ठ ५०-५१

२. नारद पुराण, पूर्व भाग, ७४/४४–"रक्तचन्दन पुष्पैश्च सिन्दुराद्यैः समर्चयेत्।"

३. बृजलाल भट्ट–श्री हनुमत बाल चरित्र, २/५ तथा ४/२१

-22-

पूजन में गुड़, नारियल का गोला और मोदक, मध्याह्न में गुड़, घी और गेहूँ की रोटी का चूरमा या स्निग्ध रोट और रात्रि में आम, अमरूद या केला आदि अर्पण करना चाहिए।"[४]

श्रीराम तथा हनुमान दोनों के लिए समानरूप से पंचोपचार, दशोपचार अथवा षोडशोपचार-पूजा का विधान है। षोडशोपचार पूजा में-१. आवाहन, २. आसन, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमन, ६. स्नान, ७. वस्त्र (यज्ञोपवीत), ८. चन्दन, ९. अक्षत, १०. पुष्प, ११. धूप, १२. दीप, १३. नैवेद्य के सन्दर्भ में विशिष्टता है। जहाँ तक पुष्प का सम्बन्ध है, कुछ विद्वानों के अनुसार हनुमान के लिए पुरुषवाची (कमल, केवड़ा, गेंदा आदि) रक्त वर्ण के पुष्पों की अपेक्षा है। दोनों देवताओं की पूजा में शास्त्रोक्त पद्धति से अंगन्यास, करन्यास, ध्यान तथा विनियोग पूर्वक जप-पाठ, हवनादि करने से सिद्धि होती है। श्री राम की पूजा में रामानन्द द्वारा अपने 'रामावत सम्प्रदाय" में प्रचलित "ॐ रामाय नमः" इस षडक्षर मंत्र को विशेष महत्ता है। हनुमान् की पूजा के लिए सप्ताक्षर मन्त्र "ॐ हनुमते नमः"[५] तथा द्वादशाक्षर मन्त्र "ॐ ह्रौं ह्स्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः"[६] सकल सिद्धियों के प्रदाता हैं। इनकी उपासना में विविध प्रकार की सिद्धियों तथा उपसिद्धियों के लिए अनेक मन्त्रों की व्यवस्था है। तांत्रिकों में आंजनेय की पूजा का विशेष प्रचलन है। उनकी अधिकांश सिद्धियाँ अर्द्धरात्रि में होती हैं। अनेक प्रकार की झाड़-फूंक में प्रयुक्त होने वाले हनुमान के शाबर मन्त्रों की संख्या भी अपार है। इनकी उपासना के निमित्त एक मुखी पंचमुखी, सप्तमुखी तथा एकादशमुखी हनुमत्कवचों का विधान है।

बाह्यपूजा तथा वाचिक पाठ की अपेक्षा मानसिक पूजा और मानस जप को दोनों देवताओं की पूजा में विशेष महत्त्व दिया गया है। यदि साधक लक्ष्य विशेष को लेकर किसी मंत्र विशेष का निश्चित संख्या में वाचिक जप करता है तो अनुष्ठान की समाप्ति पर मंत्र-संख्या के दशांश का हवन करना भी आवश्यक है। मानस जप का जहाँ तक सम्बन्ध है, यह अपरिमित होता है तथा इसके लिए किसी भी प्रकार के यज्ञ हवनादि की आवश्यकता नहीं है।

'हनुमान चालीसा' (तुलसी), 'हनुमान साठिका' (तुलसी) 'बजरंग बाण' (तुलसी), 'हनुमत पचासा' (मान) आदि के माध्यम से विशेष कार्य की सिद्धि के निमित्त हनुमान की उपासना में वृद्धि-पाठ का भी विधान है। इस प्रकार का साधक प्रथम दिन एक पाठ करता है, दूसरे दिन दो पाठ तथा इसी क्रम से नित्यप्रति एक-एक पाठ बढ़ाता रहता है। यह अनुष्ठान ११, २१, ३१, या ४१ दिन तक किया जाता है।[७] अन्तिम दिन पाठों की संख्या दिनों की संख्या के बराबर हो जाती है। उसी

---

४. कल्याण 'श्री हनुमान विशेषांक' के अन्तर्गत हनुमान शर्मा का लेख 'श्री हनुमान्जी की उपासना', पृष्ठ ४८७.

५. कल्याण, 'श्री हनुमान विशेषांक', पृष्ठ ४८८।

६. हनुमान इन आर्ट एण्ड मिथॉलोजी (के.सी. आर्यन), ग्रन्थारम्भ में लिखित।

७. संग्रहकर्ता-रामयशराम शर्मा, भक्त शिरोमणि श्री हनुमान, पृष्ठ सं. २०।

दिन साधक को हवन करके यथाशक्ति ब्रह्मभोज करना चाहिए। यद्यपि राम अथवा हनुमान ही नहीं प्रायः सभी देवताओं से सम्बद्ध अनुष्ठानों में साधक के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य तथा संयम की आवश्यकता है तथापि हनुमान् के उपासक के लिए नियमपालन में लेशमात्र की शिथिलता भी क्षम्य नहीं है। साधक को चाहिए कि भूमि पर शयन करे, धोबी द्वारा प्रक्षालित वस्त्रों को न पहने, क्षौर कर्म न करे तथा बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धियों के लिए सचेष्ट रहे।

यद्यपि सामान्य उपासक के लिए अनुष्ठान के विशेष नियमों का पूर्णतया पालन करना अपेक्षित नहीं है। तथापि हनुमान के उपासक के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नितान्त आवश्यक है। सभी हनुमान मन्दिरों के पुजारी ब्रह्मचर्य व्रतधारी होते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की आगरा में एक प्रसिद्ध मूर्तिकार से भेंट हुई थी। अन्यान्य मूर्तियाँ देखने के उपरान्त जब उनसे हनुमान की मूर्ति के सम्बन्ध में प्रश्न किया गया, तो मूर्तिकार का उत्तर था—"*हनुमान जी की मूर्ति कौ निर्माण करनो हर काऊ के बस की बात ना है। जाके ताँई परम आवश्यक है कि वा अवधी में मूर्तिकार ब्रह्मचर्य और संयम से रहै। एक मूर्ति बनाने वालो इन नियमन कौ पालन ना कर तौ हुतो, या कारन ते मूर्ति तरासने समय वा की आँख में पत्थर की किर्च गिरत भई, सो वह काना है गयो। ऐसो ही एक दूसरो मूर्तिकार इन नियमन कौ पालन ना करिबे के कारन बहुत दुखी भयो। वा मूर्तिकार की छैनी छिटक के वाके पैर में लगत भई और वो जख्मी है गयो। बाऊ जी। यही कारन ते हौं तो हनुमान जी की मूर्ति नाय बनावौं।*" हनुमान के नियमित उपासक के लिए भी इसी प्रकार के सिद्धान्त अपेक्षित हैं। संयम के अभाव में उसका मानसिक रूप से विकृत हो जाना बहुत सम्भव है। स्त्रियों को अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रतधारी आंजनेय के शरीर का स्पर्श करने का भी अधिकार नहीं है। रामोपासना में ब्रह्मचर्यादि का दृढ़ता से पालन करना अपेक्षित है, अनिवार्य नहीं। राम की पूजा प्रायः युगल स्वरूप में लक्ष्मण तथा हनुमान सहित होती है। इनकी पूजा का अधिकार बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, ब्रह्मचारी-गृहस्थ सभी को समान रूप से है।

हनुमान के भक्त का उनके (हनुमान के) इष्टदेव भगवान् राम तथा जगज्जननी भगवती सीता के प्रति श्रद्धावान होना आवश्यक है। प्रौढ़ भक्तगण हनुमान-मन्दिर में इनकी प्रतिमा के हृदयस्थ सीता-राम के युगल स्वरूप का ध्यान करते हुए उनकी भी स्तुति करते हैं। वैसे स्थूल रूप से हनुमान की पूजा तथा इनके प्रति किये जाने वाले अनुष्ठान में राम-पूजा का कोई विधान नहीं है। जबकि श्रीराम की पूजा तथा उनके निमित्त किये जाने वाले अनुष्ठान में उनके भक्त हनुमान की भी पूजा का नियम है। रामायण के अखण्ड पाठ अथवा किसी अन्य प्रकार से होने वाली राम-कथा में हनुमान के लिए सिंहासन पर अथवा उसके समीप आसन की व्यवस्था परमावश्यक है, क्योंकि—

"यत्र-यत्र रघुनाथ कीर्तन तत्र-तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारि परिपूर्ण लोचनं मारुति नमत राक्षसान्तकम्।।

"जहाँ-जहाँ भगवान् राम (के गुण, यश, कथा, सौन्दर्य आदि) की चर्चा होती है, वहाँ-वहाँ हनुमान (श्रद्धा से) अञ्जलि-बद्ध किये हुये हाथों को मस्तक से लगाकर तथा नेत्रों में (प्रेम के)

आँसुओं को धारण किये हुए उपस्थित रहते हैं। राक्षसों के लिए कालस्वरूप उनको प्रणाम करना चाहिए।'' ऐसे भक्तराज के लिए आसन की व्यवस्था न करने से साधक के पुण्यों का क्षय होता है।

हिन्दू-संस्कृति में शौर्य, पराक्रम तथा शत्रु-संहारक रूप में शक्ति तथा हनुमान, ये दो ही प्रधान देवता हैं। शक्ति की उपासना में आज तक भी माँस-मदिरा का प्रभाव बना हुआ है। **'मार्कण्डेयपुराण'** में देवी के द्वारा राक्षसों के भक्षण तथा मदिरापान के स्पष्ट उल्लेख हैं। दूसरी ओर हनुमान् रौद्र कर्मों के विधायक होकर भी सर्वथा सात्विक वृत्ति का पालन करने वाले हैं। आंजनेय की पूजा में श्रीराम की पूजा के समान ही मांस-मदिरा आदि का प्रयोग वर्जित है। राम-भक्तों के समान ही इनके भक्तों का विशुद्ध शाकाहारी तथा सत्वगुणी स्वभाव का होना आवश्यक है।

अन्त में यह उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि हमने कुछ महात्माओं को ऐसा करते हुए सुना है कि प्रातःकाल हनुमान की उपासना नहीं करनी चाहिए। उनका तर्क है कि उस समय आंजनेय अपने इष्टदेव की सेवा में रहते हैं और भक्तों द्वारा किये जाने वाले नाम-जप से उनके मूलकार्य में व्यवधान आता है। कुछ महानुभावों का कथन है कि रात्रि में अपने प्रभु की सेवा में व्यस्त रहने के कारण हनुमान प्रातःकाल देर तक सोते रहते हैं, जिसके फलस्वरूप वे उस समय अपने भक्तों की पूजा को ग्रहण करने में असमर्थ रहते हैं। इसी प्रकार का एक तर्क 'मानस' की यह पंक्ति भी है, जिसमें केसरी-नन्दन विभीषण से कहते हैं कि-

''प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिले अहारा।।''

जहाँ तक प्रथम दोनों तर्कों का प्रश्न है, वे इस लिए महत्वहीन हैं कि हनुमान् देवाधिदेव हैं। वे एक ही समय में अनेक रूप धारण करने में समर्थ हैं। इस प्रकार एक ही काल में श्री राम की सेवा करना, जहाँ-जहाँ राम-कथा हो रही हो वहाँ-वहाँ उपस्थित रहना तथा अपने असंख्य भक्तों की सेवा को ग्रहण करना इनके लिए सहज कार्य है। तीसरे तर्क के रूप में विभीषण के प्रति मारुति के कथन में श्री राम की भक्तवत्सलता, राक्षस, कुलोत्पन्न विभीषण की हीनता-ग्रन्थियों को समाप्त करने तथा अपने आदर्श विनय-भाव की व्यंजना है। पूरे प्रसंग को पढ़ने के पश्चात् प्रातःकाल इनका नाम न लेने का वाच्यार्थ स्वयमेव समाप्त हो जाता है। पुनश्च ''कह हनुमंत विपति प्रभु सोई। जहँ तब सुमिरन भजन न होई।।'' के सिद्धान्त के मानने वाले हनुमान को किसी भी स्थिति में अपने भक्तों का भक्ति से विरत होना अभीष्ट नहीं हो सकता।

साक्षात् सेवा-विग्रह हनुमान् के प्रति सेन्तपति ने ठीक ही कहा है-''सेवा ही के बल सेवा आपनी कराई।'' आंजनेय राम की सेवा के बल से पूज्य हुए हैं और भक्तों द्वारा की जाने वाली इनकी उपासना-पद्धति पर भी श्रीराम की पूजा-पद्धति का पर्याप्त प्रभाव है।

***

कुण्डलिनी जागरण

डा० विजय सिंह

हम लोगों का कैसा भाग्योदय, कितना पुण्योदय अथवा जन्म-जन्मान्तरों की साधु-सन्तों की सेवा के फलरूप वो कृपानिकेतन सद्गुरु भगवान ने स्वयं कृपा कर हमें अपनाया और इस कठिन कलिकाल के प्रवाह से बचने हेतु अमोघ मंत्रदान के साथ शक्तिपात कर, व्यष्टि कुण्डलिनी जागृत करके, उन अनुभूतियों से सहज ही परिचय करा दिया जिसे कठिन योग साधना से ही उपलब्ध किया जाता है। उत्कट साधना, वैराग्य द्वारा जिन लोगों ने अन्तर जगत में प्रवेश पाया उन्हें सिद्धियों के अस्तित्व का अनुभव हुआ। जिनमें समर्पण के साथ वैराग्य भी है वे आज इष्ट सारूप्यता अथवा सद्गुरु सारूप्यता में लीन रहकर जीव सेवा में रत हैं।

किसी अनुभूति रहित साधक के मन में यह सहज प्रश्न आकुलता पैदा करती है कि कुण्डलिनी क्या है ? शक्तिपात से इसका सम्बन्ध क्या है ? सद्गुरु की भूमिका और साधक की पात्रता से इसका क्या लेना देना है। इन प्रश्नों का समाधान हमारे सद्गुरु भगवान योगिराजराजेश्वर श्री चन्द्रमोहन प्रभु ने अपने प्रवचनों में, सिद्धयोग के सैंकड़ों लेखों में तथा योग-सिद्धांत के दोनों खण्डों में सर्वग्राह्य, सहज भाषा के माध्यम से, अनेक उदाहरणों द्वारा किया है। उनकी स्मृति के आधार पर यहाँ इस लेख का विषय बना रहा हूँ।

प्राण के साथ जप का महत्व

श्री गुरुदेव भगवान मंत्र को श्वांस-प्रश्वांस से जपने के लिये प्रोत्साहित करते रहे हैं। श्वांस जड़ शरीर और चैतन्य आत्मा को जोड़ता है। प्राण बहुत बारीक सेतु है। यह काया और चेतना को एक जगह एकत्र किये हुये है। कुण्डलिनी चेतन शक्ति की मानव में केन्द्री-भूत अवस्था है। सिद्धयोग में सद्गुरु द्वारा साधक पर शक्तिपात किया जाना तथा कुण्डलिनी जागरण से होने वाले मनो-भूमिकाओं के विकास से सम्बन्धित होना ही इस विधा की विशेषता है। चित्ति कुण्डलिनी भौतिक तलपर मानव की क्रियाशक्ति है। अधिभौतिक तल पर चित्ति सर्जक की मनःशक्ति, भावाभिव्यक्ति के रूप में क्रियाशील रहती है। आध्यात्मिक स्तर पर चित्ति विशुद्ध आत्म अथवा चैतन्य शक्ति है। किसी कार्य के कुशल निष्पादन के लिये चित्ति स्पन्दन का तीनों स्तर पर क्रियाशील होना आवश्यक है, साथ-साथ एक बात और आवश्यक है, वह है चित्स्पन्द का भौतिक तलपर सतेज प्रकट होना तथा ऋतयुक्त होना। प्राण एक छोर पर चेतन तत्व से जुड़ा है वहीं दूसरे छोर पर देह से। प्राण के निकलने के साथ काया की जड़ता विदित है।

चित्तिशक्ति की अर्जना

आज योग के आसन, प्राणायाम के अभ्यास द्वारा जैविक ऊर्जा को अत्यधिक विकसित होना, वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध किया जा चुका है। धारणा व ध्यान द्वारा सिद्धयोग के अन्तर्गत

चित्तिशक्ति का विकास होता है। यह विकसित शक्ति मनोभूमि को सम्प्रज्ञात ज्योति से प्रकाशित कर व्यक्ति को अनोखी दृष्टि प्रदान करती है।

कुण्डलिनी की शरीरस्थ स्थिति को जो शिव-संहिता में बताया गया है, देखें–

पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुदमेढ्रान्तरालगा।
तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ति कुण्डलिनी सदा।।

अर्थात्–गुदाद्वार से ऊपर मेढ़ के मध्य भाग में योनि का स्थान है, यह पश्चिमाभिमुखी है। इसी स्थान पर कुण्डलिनी की स्थिति है। यह नागोपमा कुण्डलिनी संसार की आधारभूत महाशक्ति है। मूलाधार में यह स्वर्णाभ रंग की है तथा वहीं पर रक्तवर्ण तप्त स्वर्णाभ कामबीज की स्थिति है।

तत्र बन्धूक पुष्पाभं कामबीजं प्रकिर्तितम।
कल हेमसमं योगे प्रयुक्ताक्षर रूपिणम्।।

अतः सुषुम्णा, कामबीज एवं कुण्डलिनी तीनों मूलाधार में होने से त्रिपुर भैरवी कहलाती है मूलाधार से आज्ञा चक्र तक के कमल दलों के बीजों की कुल संख्या पचास मातृकायें हैं। स्वर और व्यंजन ही मातृकायें हैं। अ से लेकर क्ष तक पचास अक्षर सबसे अनोखे पुरातन चित्र शब्द हैं। बीजों से मंत्र और मंत्र सम्वाक चेतन शक्ति का हुआ करता है। कठोर अध्यात्मवादी भोग को दृढ़ता पूर्वक नकारते हुये केवल श्रेय मार्ग को महत्व देते हैं। परन्तु दूसरी ओर सिद्धयोग के मार्ग में प्रेय तथा श्रेय दोनों की उपलब्धि का प्रमाण बताया गया है। स्कन्दपुराण में सिद्धसद्गुरू के वंदन में कहा गया है कि–**भुक्ति मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरुवे नमः**। इस पथ में भोग अथवा संसार को नकारा नहीं गया है अपितु जागृत भाव से ज्ञान पूर्वक वर्गों का त्याग होता जाता है तथा क्रमशः अपवर्ग की ओर साधना के द्वारा बढ़ना होता है। कुण्डलिनी का जागरण सिद्धसद्गुरू के शक्तिपात से होना ही श्रेयस्कर बताया गया है। क्योंकि कुण्डलिनी के अकस्मात जागरण से कभी-कभी व्यक्ति को मानसिक तथा शारीरिक तीव्रतर आघात के कारण अत्यधिक समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। ऐसी परिस्थिति में सिद्धसद्गुरू ही अपने सर्वज्ञता से उस व्यक्ति का समाधान कर सकने में समर्थ होते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि–गुदाद्वार से ऊपर मेढ़ के मध्य भाग में योनि का स्थान है, यह पश्चिमाभिमुखी है। इसी स्थान पर कुण्डलिनी की स्थिति है। यह नागोपमा कुण्डलिनी संसार की आधारभूत महाशक्ति है। मूलाधार में यह स्वर्णाभ रंग की है तथा वहीं पर रक्तवर्ण तप्त स्वर्णाभ कामबीज की स्थिति है। सामान्य मनुष्य में कुण्डलिनी की शक्ति का प्रवाह शरीर की ओर होता है। यही इन्द्रियों के भोग में सुखानुभूति का कारक है। शरीर की ओर प्रवाहमान कुण्डलिनी काम-शक्ति करती है, इसे ऊर्ध्वगामी, उर्ध्वरेतस की अवस्था योग में कहा गया है।

प्राण और वासना का चमत्कारी सम्बन्ध है। श्वांस को शांत रखकर कोई क्रोधित नहीं हो सकता, श्वांस को शांत रखकर कोई कामोत्तेजित नहीं हो सकता। श्वांस को शांत रखकर ही कोई

ध्यान में उतर सकता है। कुण्डलिनी के जगने का तात्पर्य सुषुम्णा में संचरित होने से है। ऐसा होने पर व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व में रूपान्तरण का तत्काल अनुभव होने लगता है।

हम लोगों को सद्गुरु भगवान के सान्निध्य में पहुँचते ही जो अभ्यान्तर में अनुभव होता रहा है, वह शक्तिपात और कुण्डलिनी के सुषुम्णा में संचरित होने के कारण ही होता रहा है। हठयोग में साधना की उग्रता से कैसे कुण्डलिनी जागरण बताया गया है ? इसे हम अब विचारते हैं। एकांत, मनोहारी, वैराग्य उत्पन्न करने वाला, जहाँ शब्द न होता हो ऐसा मठ कक्ष अथवा शिवालय हो। नीरव प्रदेश के चयन के बाद आसन हेतु कुश दाभ बिछाकर उसके ऊपर धुला तह किया वस्त्र और उसके ऊपर मृगछाला डालकर सिद्धासन से अर्थात जांघ को पिंडली से मिलाकर पांव के तलुए एक पर एक दृढ़ कर गुदा स्थान के मूल में जोर से दबाना चाहिए, बायां पैर लिंग नाल पर तथा शरीर का भार गुदा मूल में लगे एड़ी पर ही संतुलित हो जिससे मूलबन्ध लग जाये। नासाग्र दृष्टि स्थिर कर जालन्धरबन्ध लगाना चाहिये। इससे ठोड़ी कंठ के गर्त में जम जाती है। नाभि के नीचे स्वाधिष्ठान चक्र में उड्डियान बन्ध लगाना चाहिये, नाभि ऊपर उठती है, पेट पीठ की ओर सरकता है और हृदय कमल विकसित होता है।

हठ योग की तैयारी में यम नियम के पालन द्वारा आधार भूमि पहले से तैयार होना चाहिये। अभ्यास के बल से प्रत्याहार और प्राणायाम के द्वारा ध्यान को साधने से अपान वायु मूलबन्ध के द्वारा अवरुद्ध होकर पीछे लौटती है, मणिपुर नाभिकमल में गरजने लगती है। आसन की उष्णता कुण्डलिनी को जागृत करती है। अनुभव किये साधकों ने जो विवरण प्रारम्भ में कुण्डलिनी के दिये हैं उनको देखें।

नागिन का सपोला कुमकुम में रंगा हुआ अथवा विद्युत के बने कंगन सा अग्नि ज्वाला से प्रदीप्त सोने के पिघलते रूप वाली कुण्डलिनी जागकर सप्त धातुओं को चट कर शरीर के स्थूलता को चटपट समाप्त कर नस नाड़ियों के समूह को तपाके परम शुद्ध बनाती हुई पृथ्वी और जल दोनों महाभूतों को खाकर तृप्त हुयी सुषुम्ना में प्रवेश कर शान्त हो जाती है।

इस अवस्था में योगी प्राण में अमृतानुभव पाता है। इड़ा पिंगला का समाधान सुषुम्ना में होता है। अब हृदय कमल में शांत कुण्डलिनी अपना तेज छोड़कर अति सूक्ष्म प्राणरूप, स्वर्ण शलाका की तरह दिखायी देती है। ऐसे योगी के समक्ष अणिमादि सिद्धियाँ उपस्थित रहती हैं। यहाँ पृथ्वी तत्व का विलय जल में, जल तत्व का विलय तेज में, तेज का लोप वायु में इसके बाद शरीरान्त तक वायु तत्व ही रह जाता है। ब्रह्मरन्ध्र में सोऽहं परब्रह्म में लीन होने से पूर्व महाभूतों का लोप हो जाता है। उस ब्रह्मानन्द में आकाश समेत सब कुछ विलीन हो चुका होता है। इस पूर्ण सिद्ध की अवस्था में योगी कालजयी, कर्तुम अकर्तुम सर्वथाशक्यता को प्राप्त हुआ करता है। **परमाणु परममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः।** अर्थात परमाणु से लेकर परम महततत्व या मूलप्रकृति पर्यन्त पूर्ण अधिकार कर लेता है।

मातृवान, पितृवान, आचार्यवान पुरुषो वेद–वही परमात्मा को पा सकता है जिसे सुसंस्कारों

युक्त माँ-बाप और सिद्धगुरु प्राप्त हों। हठयोग में कुण्डलिनी जागरण ऊपर बताया गया है। सिद्धयोग में सद्गुरु के शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी शिष्य में सहज ही जग उठती है। परन्तु इसे स्थायित्वता साधना एवं सद्गुरु के प्रति समर्पण से मिलता है।

अतीन्द्रिय अनुभव

सद्गुरु और ईश्वर तत्वतः एक हैं। भगवान पतंजलि ने अपने योग सूत्र में **पुर्वेशामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्** अर्थात गुरु तत्व वह तत्व है जिसकी हदबंदी काल नहीं कर पाता। अकाल तत्व ही सद्गुरु एवं ईश्वर है। जिस प्रकार से आकाशीय विद्युत आदि काल से विपुलता से मौजूद है और रहेगी परन्तु हमारे किस काम की, वहीं मानव द्वारा अनुसंधानित व्यवस्थित विद्युत का हम आनन्द पूर्वक उपयोग भिन्न-भिन्न ढंग से करते हैं। ठीक इसी तरह सद्गुरु के शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी जागरण में सद्गुरु अपने त्रिकालज्ञता से शिष्य के जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों को देख कर, उसके पात्रता के अनुसार शक्तिपात करते हैं। शक्तिपात की तीव्रता के अनुसार ही शिष्य के कुण्डलिनी में स्पन्दन होता है।

कुण्डलिनी के जागरण के साथ शक्तिपात प्राप्त व्यक्ति को अनूठे अनुभव होने लगते हैं। जन्म जन्मान्तरों के अनुभव कुण्डलिनी के जागने से जग उठते हैं। तरह-तरह की ध्वनि, तरह-तरह की रंग बिरंगी जीवन्त ज्योति, चेतना के विस्तार से होने वाले इन्द्रियातीत अवर्णनीय अनुभव का प्रवाह एक अनूठे अपरिमित सूक्ष्म जगत से परिचित कराने लगता है। शक्तिपात साधक का सहयोगी बन जाता है। इसे साधना से अपनाना होगा। समर्पण और कृतज्ञता से कुण्डलिनी यात्रा के अन्तरायों का शमन करना होगा, अन्यथा प्रमाद, कौतुक, बड़े ध्यानी ज्ञानी होने का अहंकार सद्गुरु की अहैतुकी कृपा से वंचित कर 'पुनर्मूषको भव' की कथा को चरितार्थ करता है।

***

यह अच्छा है कि कभी-कभी हम कठिनाई और कष्टों में पड़ जाते हैं; क्योंकि उनसे प्रायः हम अपने अन्तर में प्रवेश करते हैं और यह सोचते हैं कि हमारा यहाँ का जीवन निर्वासन का है और ऐसी दशा में हमें किसी भी सांसारिक वस्तु में विश्वास नहीं रखना चाहिये।

कला एवं सिद्धयोग की परिभाषा तथा सैद्धान्तिक स्वरूप

कु० राजकिशोरी सिंह

मनुष्य की विकास यात्रा के सारे उपक्रम अपने अस्तित्व के विकास और आनन्द की खोज के लिए हैं। आनन्द का उत्स कहाँ है, इस बारे में मनीषियों, संतों और योगियों की लम्बी चिंतन परम्परा रही है। आत्मबोध और जगत्बोध के प्रयास चिरन्तन काल से होते आ रहे हैं। कभी ऋषि गा उठे-**ईशावास्यमिदं सर्वं** तो कभी योगाचार्य घोषित करते हैं-**योगश्चित्तवृत्ति निरोधः**।। अन्तरानुभूति बड़ी विलक्षण होती है। उसे रूपायित और शब्दायित करने की ललक ने साहित्य और कला को जन्म दिया। योगानुभूतियाँ साधक के कठिन प्रयासों से देह और चित्त की शुद्धि की विभिन्न स्थितियों को प्राप्त करने पर होती हैं। ये अनुभूतियाँ भाव, विचार व रूपगत तथा प्रकाशगत भी होती है। जब साधक अर्थात् आनन्द प्राप्ति मार्ग का उत्कट जिज्ञासु पूर्ण सद्गुरू के शरणागत हो जाता है और वे सिद्धगुरू कृपा की अहैतुक वर्षा से साधक को कृत-कृत्य कर देते हैं, कि साधक की अध्यात्म-यात्रा एक जन्म या अनेक जन्मों से होती हुई सद्गुरूतत्त्व में लय स्थिति तक जाकर ही थमती है। इसी को सिद्धयोग कहते हैं। स्थाणु (ठूंठ) से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त दशाओं को साधक अन्तर्जगत में अनुभूत करता है।

एक विशेष तथ्य की ओर ध्यान जाता है, वह यह है कि जहाँ प्राचीन तन्त्र एवं योग ग्रन्थों में यथा शिवपुराण, वायवीय संहिता, योगशिखोपनिषद्, योगवाशिष्ठ, तंत्रालोक, कुलार्णव तन्त्र तथा कुछ भागवत् ग्रन्थों में सिद्धों के शक्तिपात द्वारा होने वाले प्रभावों का सांकेतिक वर्णन मिलता है वहीं बड़े आश्चर्य का विषय है कि उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में ऐसे ग्रन्थों की रचना हुई है जिनमें सिद्धयोग की प्रक्रिया और उससे साधक में होने वाले विशिष्ट अनुभवों का विशद वर्णन मिलता है। सिद्धयोग प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है। परन्तु सिद्ध सद्गुरू के सानिध्य के बिना इनके विवरण मात्र सैद्धान्तिक विषय बन कर रह जाते हैं। गुरु द्वारा शक्तिपात से व्यक्ति में उसकी अपनी अन्तर्शक्ति का (कुण्डलिनी) जागरण होता है। परिणामतः शिष्य के लिए एक अपूर्व जगत् का द्वार खुल जाता है। वह एक नयी दृष्टि पाता है। हमें ऐसे दृष्टि सम्पन्न लोगों द्वारा भारतीय कला में योगदान की समीक्षा भी करना समीचीन जान पड़ा है। सिद्धयोग की यह विशेषता है कि कुण्डलिनी जाग्रत होने के बाद गुरु उपदिष्ट साधना का निरन्तर, उत्साह पूर्वक, धैर्य और श्रद्धा से अभ्यास करने पर चित्त-शक्ति का विकास स्वयमेव होने लगता है। मानव माया में कुण्डलिनी समष्टि में व्याप्त चिद्-शक्ति का ही घनीभूत रूप है। स्पन्दन शास्त्र पिण्ड व ब्रह्माण्ड के ऐक्य का निरूपण करता है। इसकी पुष्टि योग दर्शन के सूत्र में देखने को मिलती है। यथा, भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात् योगी काया के भिन्न-भिन्न केन्द्रों पर जब संयम करता है, उसे प्रकृति में निहित तमाम रहस्यों का ज्ञान तथा अणिमादिक सिद्धियों की प्राप्ति होती है। **यस्मिनज्ञाते सर्वमिदम ज्ञातं भवति सा योग विद्या।**

योग की ऐसी महानता के कारण मनोविज्ञान में योग-मनोविज्ञान का अध्ययन तथा आज सारे संसार में अलग से परा-मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानव में छिपे अतीन्द्रिय शक्ति की खोज में वैज्ञानिक जुटे हुए हैं।

योगी को सभी रूप परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी मनोनेत्रों के सम्मुख साकार हो उठते हैं। मध्यकालीन संतों, जिनमें पठित-अपठित, साक्षर-निरक्षर दोनों सम्मिलित हैं, की काव्य रचना जो आज भी कालजयी है, का रहस्य चिति के प्रसाद में ही सन्धान पाता है। कबीर, दादू, पलटू, जीवा जैसे अनपढ़ों के मर्मस्पर्शी साहित्य सृजन इसके उदाहरण हैं। **'जग कहता पोथी की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी'** कबीर का यह कथन उपर्युक्त विचारों का गहन प्रमाण है। यहाँ यह मानना होगा कि जो कुछ हमें भव्य भासता है वह चिति के प्रभाव के कारण है। कलाकार की कलाओं में जो यथार्थ, रस संचार हमें प्राप्त होता है वह कलाकार में चित्ति स्पन्दन के ही कारण है। कला की अभिव्यक्ति कलाकार के स्वयं के आन्तरिक दिव्यालय की झलक है। **रसौ वै सः। रसं ह्येवायम् लब्ध्वानन्दि भवति।।**

विद्वान कला समीक्षकों ने एकमत से यह स्वीकार किया है कि अद्यतन भारतीय कला का मौलिक उद्देश्य मानव के मनोमलजगत को भूतमय जगत से जोड़ना रहा है।

कला चाहे जिस विधा से सम्बन्धित हो यह व्यष्टि और समष्टि की समस्याओं का ही समाधान देता है। श्री जयशंकर प्रसाद के शब्दों-''ईश्वर की कर्तृत्व-शक्ति का संकुचित रूप जो हमको बोध के लिए मिलता है, वही कला है।''

सिद्धयोग अति प्राचीन योग विद्या है। जिसका निरन्तर प्रवाह काल खण्डों को लाँघता हुआ आज भी परिष्कृत रूप में विश्व में विद्यमान है।

दीक्षाप्रक्रिया-शक्तिपात दीक्षा से साधक को शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्तर पर अनेक प्रकार के अनुभव होने लगते हैं। उसे यौगिक क्रियाएं, विचार-परिवर्तन और आध्यात्मिक विषय की सूक्ष्म समझ होने लगती है। दीक्षा के भी भेद हैं। सिद्ध सद्गुरु कर-स्पर्श द्वारा, उपदेशात्मक वाणी, दृष्टि निक्षेप अथवा मानस संकल्प से ही व्यक्ति में शक्ति का संचार करते हैं। दीक्षा की शास्त्रीय परिभाषा **''दीयते ज्ञानं क्षीयते प्रकाशावरणम्''** बताया गया है। व्यक्तियों में दीक्षा द्वारा प्राप्त शक्ति का स्फुरण और प्रकटीकरण विविध रीतियों से होता है। परिणामतः आरम्भिक अनुभव पूर्व संस्कार से प्रभावित होने के कारण अलग-अलग स्तर के होते हैं। शाक्त तंत्र शास्त्र में, इन प्रारम्भिक अनुभव भेदों के आधार पर दीक्षा भेद रूप से क्रियावती, कलावती, वर्णमयी तथा ज्ञानमयी का विवरण आया है।

क्रियावती दीक्षा-क्रियावती दीक्षा के परिणाम स्वरूप जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति के स्फुरण में यदि साधक का कायिक नाड़ी तंत्र शुद्ध नहीं हुआ तो यह विचित्र चित्ति शक्ति प्रथमतः नाड़ी के मल दोषों के शोधन हेतु साधक द्वारा स्वाभाविक अचेष्टित आसन, प्राणायाम, बन्ध एवं भिन्न-भिन्न

मुद्राओं को कराती है। नाड़ीतंत्र के परिमार्जित होने की क्रिया सामान्य व्यक्ति की दृष्टि में जहाँ श्रम साध्य व कष्टकर मालूम होगी वहीं उस व्यक्ति को मनैकाग्रता तथा कुण्डलिनी के प्रभाव के कारण उन क्लिष्ट आसन, बन्ध, भस्त्रिका आदि प्राणायामों के दीर्घ समय तक करने से न वह थकता है न हीं उसे कष्ट का भान होता है। चित्त शक्ति का स्पन्दन व्यक्ति की काया के कोषों में आनन्द की हिलोरें भर देता है, ऐसी अवस्था में चित्त के प्रसाद व स्वातंत्र्य से स्वस्फुरित नृत्य, सामगान, भावावेशित अभिनय के निरूपण की ओर कला समीक्षकों ने कदाचित् ही ध्यान दिया है।

कलावती दीक्षा–कलावती दीक्षा से साधक में जागृत चित्तशक्ति कुण्डलिनी सुषुम्णा में प्रवेश करके उसके दायें भाग में अवस्थित चित्रा नाड़ी को जब स्पर्श करती है, साधक को ज्योतिदर्शन, दिव्य लोकों तथा वहाँ के निवासियों की जीवनचर्या, ज्योतिदर्शन, भाषा एवं विज्ञान का बोध होता है। साधना की परिपक्वता की परीक्षा सूक्ष्म लोकवासी लिया करते हैं। काम, लोभ, अहंकार चित्तशक्ति के विकास में अंतराय लाते हैं। कभीकदा पूर्व संस्कारों के प्रभाव में निम्न योनिगत जीवों के अत्यन्त वीभत्स भयावह दृश्य का साक्षात्कार होता है। सच तो यह है कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तूर्य सभी अवस्थाओं में चिति की ही क्रिया सिद्धि संसर्जित है। भारतीय अथवा अन्य सभी प्रतीकों, बिम्बों, टोटमों का सृजन संबद्ध असंबद्ध रूप से इस मानसिक अवस्था में हुआ है। कला के संदर्भ में प्रतीक, बिम्ब, टोटम आदि के अब तक के विचारों की समीक्षा सिद्धयोग के दृष्टिकोण से पंचम अध्याय में की गई है।

क्रमशः

जब तक हम लोग इस संसार में हैं हम कष्टों और प्रलोभनों से बच नहीं सकते। मनुष्य का यहाँ का जीवन प्रलोभन का जीवन है। अतएव सभी को अपनी प्रलोभनों के सम्बन्ध में सतर्क होना चाहिये और प्रार्थना में आत्मनिरीक्षण करना चाहिये अन्यथा आसुरी वृति को उन्हें विचलित करने का मौका मिल जायेगा।

सिद्धयोग साधना शिविर कांगड़ा (हि.प्र.)

केशवदेव उपाध्याय

देवभूमि हिमालय की चतुर्दिक् हिमाच्छादित धौलागिरि की श्रृंखलाओं की गोद में सुशोभित सिद्धसेवित शक्ति पीठ कांगड़ा में इस वर्ष कुछ संस्कारी जीवात्माओं के लिए सर्वत्र त्राहि-त्राहि मचा देने वाली भयंकर गर्मी में तन-मन एवं चित्त को शान्ति, शीतलता तथा आध्यात्म शक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से २ जून से ३० जून २००२ तक श्री सदाशिव मंदिर सिद्धयोगाश्रम में शिविर का विशेष आयोजन पूर्व निर्दिष्ट श्री सद्गुरु देव के निर्देशानुसार कांगड़ा के साधक-साधिकाओं के सौजन्य से किया गया। इससे पूर्व विगत १९९५ सन् से दिसम्बर मास की बर्फीली हवाओं का स्वागत करते हुए प्रतिवर्ष २५ दिसम्बर से ३० दिसम्बर तक गुप्तरूप से केवल साधक-साधिकाओं के लिए शिविर का आयोजन श्री सदाशिव सिद्धयोग मन्दिर कांगड़ा के सत्संग साधना कक्ष में होता आ रहा है। दिसम्बर २००१ के सत्संग के अवसर पर निरन्तर समाधि की उच्च भूमिकाओं में अभ्यासरत पुण्यात्मा महाभाग्यशाली अमितपुरी (महात्माजी) के माध्यम से श्री सद्गुरुदेव ने अपने संस्कारी बच्चों को सिद्धयोग की वास्तविक साधना का सुअवसर प्रदान करने के लिए जून माह की उपर्युक्त तिथियों को शिविर का निर्देश कर दिया था। तदनुसार श्री सद्गुरुदेव के अनन्य शरणागत प्रिय शिष्य श्री पवनपुरी जी एवं श्री विजय पुरी जी, उनके समस्त परिवार जनों तथा इष्ट मित्रों ने पूरी तरह सेवा और समर्पणभाव से आगंतुक अतिथि साधक साधिकाओं की आवास-प्रसाद की सुव्यवस्था की। इस शिविर में कानपुर, दिल्ली, वाराणसी, मिर्जापुर, बलिया, जयपुर, सहारनपुर, शिवपुरी, सोनभद्र तथा हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों से जिज्ञासु साधक तथा रोग-पीड़ित भाई-बहिन पधारे।

साधना शिविर का श्री गणेश २४ जून की सायंकालीन सत्र में अखण्ड ज्योतियों के विधिवत् पूजन से हुआ। सद्गुरुदेव के द्वारा महात्मा जी (श्री अमितपुरी जी) को समाधि में कुछ पुण्यात्माओं को अखण्ड ज्योति का एक वर्ष पूर्व आदेश हुआ था। उसी विधान के अनुसार उन्होंने अपने-अपने घरों में अखण्ड ज्योति प्रज्वलित कर रखी है। उनमें से कुछ साधकों को ज्योति वापिस लाकर इस अलौकिक पूजन के अवसर पर इस सिद्धपीठ में समर्पित कर देने का आदेश हुआ था। तदनुसार यह पूजन का कार्यक्रम तथा सर्वशक्तिमान श्री सद्गुरुदेव के श्री चरणों में समर्पण भाव की प्रार्थना की गयी। जनम जन्मान्तर के महामोहान्धकार के माया के गर्त में पड़े इस अज्ञानी और अभिमानी जीव का श्री प्रभुजी अपनी कृपा की अखण्ड ज्योति से योगमार्ग पर लाकर ध्यान और समाधि के द्वारा अपने अमृतदायी अक्षय की चरणों में समाहित करने की कृपा करें। इस भाव की प्रार्थना के पश्चात् हृदय तंत्री की आर्तपुकार और झंकार से भावविभोर दैनिक आरती की गयी। इस अवसर पर दिल्ली से पधारे श्री सद्गुरुदेव के प्रिय वत्स आचार्य चन्द्रहास शर्मा जी ने ज्योतिःपथ की साधना कर सुगम और सरल ढंग से प्रकाश डालते हुए दुःख, दैन्य, अज्ञान, असन्तोष तथा आवागमन के चक्र को काटने के लिए प्राणों की उत्तरायणगति करने के रहस्य का उद्घाटन किया। श्री सिद्धगुफा सवाई से

34 सिद्धयोग

पधारे आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव के नित्य अंग संग रहे वरिष्ठ गुरुभाई श्री भुवनेन्द्र झा ने ''योगी मत जा, मत जा, मत जा'' यह भजन अपने अन्तरतम की सद्गुरुप्रेम की गहराई से जैसे ही गाना प्रारम्भ किया सभी का मन वृत्तियों के अन्तर्मुखी प्रवाह से गम्भीर तथा अन्तर की प्रभु मिलन की अकुलाहट से स्निग्ध एवं व्यथित हो उठा।

प्रतिदिन गुरुभक्ति की गहरी अनुभूति से भरे भजनों से साधकों की भावभूमि सिद्धयोग के शक्तिपात विज्ञान के लिए तैयार होती गयी। आदरणीय झा भाई जी के भावपूर्ण शास्त्रीय रागमय भजनों ने सूखती भक्ति लता को शीतल जल से सींचने का कार्य किया। कानपुर मण्डल, सहारनपुर मण्डल तथा कांगड़ा मण्डल आदि के भाई-बहिनों के आत्म विभोर कर देने वाले गुरुभक्ति के भजनों से भी कुण्डलिनी शक्ति को उसी प्रकार अंगड़ाई चल पड़ती थी, जिस प्रकार बीन की ध्वनि सुनकर भुजंग बांबी से बाहर निकलकर झूम उठता है।

प्रातःकाल पाँच बजे से शिविर का कार्यक्रम जीवनतत्त्व साधन, आसन, नेति आदि क्रियाओं के बाद आनन्द से हृदय को आह्लादित कर देने वाली दिव्य आरती तत्पश्चात् श्री झा जी द्वारा स्वरभाव युक्त श्री गीता पाठ एवं आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा द्वारा सोपानों की तात्त्विक व्याख्या तथा ध्यान पश्चात प्रसाद वितरण तथा रोग निवारण के कार्यक्रम से सम्पन्न होता था। स्वल्पाहार के पश्चात् क्रम से सभी मण्डलों के साधकों साधिकाओं द्वारा पूर्व निर्दिष्ट आदेशानुसार अखण्ड पंचाक्षरी मंत्र का उच्च स्वर से जप एवं संकीर्तन चलता रहता। कुछ साधकों को कुण्डलिनी जागरण की सहज क्रियायें जैसे, सर्पाकार गति, भस्त्रिका प्राणायाम मेंढक की तरह उछलना, चीखना, हँसना, उछलना, नृत्यकरना, विभिन्न मुद्रायें आदि चल पड़ती। सारा वातावरण छल प्रपंच रहित शुद्ध सात्त्विकता प्रेम तथा आध्यात्मिक चेतना से सराबोर बना रहता। ध्यान और समाधि की गंगा अविरल बहती रहती। जहाँ सिद्धों की प्रत्यक्ष कृपा हो और शुद्ध विद्या का प्रकाश हो वहाँ यह सब होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इस शिविर में ऐसे अनेकों साधक थे जो योग की विधियों और परम्पराओं से जुड़े हुए हैं और इस स्थान का नाम सुनकर जिज्ञासावश प्रथम बार आये थे। उन्होंने अपना अनुभव बताया कि यह स्थान इस कदर शक्ति से चार्ज है कि अन्दर बैठते ही प्राण सरसराकर ऊपर चढ़ने लगते हैं और कुण्डलिनी जागरण का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। स्वामी योगानन्द जी की परम्परा के एक उच्च अवस्था के साधक का कथन था कि यहाँ इतना दिव्य प्रकाश है कि पूरा कांगड़ा उस प्रकाश से जगमगा रहा है।

सायंकालीन सत्र में श्री झा भाईजी, श्री पुरी जी तथा श्री ठाकुरजी आदि साधकों के भाव भक्तिपूर्ण भजनों के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव के कृपापात्र बच्चे आचार्य चन्द्रहास शर्मा के माध्यम से सिद्धों की सिद्ध विद्या के उपदेश निर्झर की तरह प्रवाहित होकर बुद्धि के सन्देह और अज्ञान मल का प्रक्षालन कर मनरूपी दर्पण को निज प्रतिबिम्ब देखने हेतु स्वच्छ बनाने का कार्य करते रहते।

सिद्धयोग 35

सिद्धयोग के साधक के जीवन में सेवा साधना और समर्पण अत्यावश्यक है।

सेवाभाव से कर्मशुद्धि, धनशुद्धि तथा अहंकार शुद्धि होती है। साधना से संस्कार जन्य मल दूर होते हैं और समर्पण से मोह शोक तथा मायाजन्य अविद्यादि क्लेश दूर होते हैं। जीवन की दिव्यता के लिए जीवन में प्रत्येक प्रकार की पवित्रता अनिवार्य है। आचार्यश्री ने बताया कि सिद्धयोग सतयुग की साधना है। इस पाप मलायतन घोर कलिकाल में इस प्रकार की साधना के अधिकारी बनाकर कृपासिन्धु श्री गुरुदेव ने अपनी भटकती संस्कारी आत्माओं को अपने परमधाम की ओर ले चलने का स्वर्णिम अवसर दिया है। गुरु तो परिपूर्ण पुरुष ही होते हैं, जिन्होंने अपने सभी बन्धन काट लिये हैं। जिनसे सभी चक्रों का भेदन हो गया है तथा जिनमें समस्त प्राणियों के प्राणकोष पर अधिकार है। जिनकी आज्ञा में कुण्डलिनी शक्ति वशवर्तिनी बनकर क्रियाशील होती है। किसी-किसी पुण्यात्मा साधक को श्री गुरुदेव शाम्भवी और वेधदीक्षायें देकर योग के अन्तर्रहस्यों का ज्ञान करा देते हैं। वह भी संकोच के साथ स्वयं को सिद्धयोग का शिष्य कह पाता है। परात्परसत्ता के अवतरण से शक्ति उसे गुरुपद पर कालान्तर में प्रयोजन वशात् अभिषिक्त कर सकती है।

आचार्य श्री ने नित्यप्रति के सिद्धयोग व्याख्यानों में स्पष्ट किया कि योगेश्वर श्री कृष्ण ने सिद्धयोग की प्रणाली श्री गीता में खोलकर समझायी है। पहले साधक अपनी बुद्धि में अपने गुरु, इष्ट, भगवान या ब्रह्मज्ञान की प्रतिष्ठा करे। संसारी छल, कपट, दम्भ पाखण्ड मायावी बुद्धि को बाहर निकाल फेंके। उस बुद्धिगंगा की दिव्य ज्ञान की धारा को हृदय सरोवर में समेटकर प्रेम का झरना बन जाने दे। फिर उस दिव्य ज्ञान और प्रभु प्रेम के आलोक में जागतिक सारे व्यवहार करे तो उसका जीवन अनासक्त, निष्काम कर्म परायण तथा योगयुक्त बन जायेगा। जिससे इसी जीवन में अमृतत्व लाभ कर कृत-कृत्य हो सकता है। ऐसा साधक ही सिद्ध योग का साधक बनता है। बौद्धिक विकास के तारतम्य से सद्गुरु के शक्तिपात का प्रभाव हर साधक पर समान प्रभाव पैदा नहीं कर पाता। इसीलिए कुण्डलिनी जागरण हो जाने पर भी आगे की यात्रा मन्दता, मध्य अवस्था और तीव्रता युक्त दृष्टिगोचर होती है।

कुण्डलिनी जागरण हुए बिना [illegible] को दिशा नहीं मिलती। संस्कारों के मल के कारण कुण्डलिनी की गति चींटी, मेंढक, बन्दर सर्प या पक्षी की भाँति मन्द या तीव्र होती है। साधक का मन और उसके प्राण जिस तत्व पर गति करते हैं, वैसी ही क्रियायें और चेष्टायें हुआ करती हैं तथा अन्तर्जगत में अनुभव होते हैं। जैसे जब मन पृथ्वी तत्व पर सक्रिय होता है तो शरीर में जड़ता, स्थूलता, भारीपन अनुभव होता है। सत्संग शिविर में एक साधिका दिव्य भाव में ऊँचाई से नीचे खड्ड में लुढ़कती चली गयी। साधकों ने जाकर उसे उठाया तो वह इतनी भारी हो गयी कि कई लोग मिलकर जैसे-तैसे उसे उठाकर ला पाये। सामान्य स्थिति में उसे दो व्यक्ति आसानी से उठा सकते थे। तीन दिन के बाद उसकी चेतना बहिर्मुखी हुई। उस समय उसने अपने ध्यानानुभव बताये उसे तनिक भी खरोंच नहीं आयी। श्री प्रभु जी उसे आकाश मार्ग से एक गुफा में ले गये थे। इस

प्रकार की दिव्य अवस्थाएँ छोटे-छोटे बच्चों से लेकर वयस्क साधकों को होती रहीं। कुण्डलिनी जागकर मल शोधन और नाड़ी शोधन का कार्य करती है। साधक गुरुमुख नहीं हो पाते। उस स्थिति में उन्हें यह भ्रम हो जाता है कि यह कोई रोग उन्हें लग गया है। अज्ञानवश वे डाक्टरों के चक्कर में पड़कर कष्ट में पड़ जाते हैं। भगवती कुण्डलिनी शक्ति स्वयं ज्ञानमयी है। वह माता की भांति साधक के दोष दूरकर उसे शुद्ध और पवित्र बनाती है। नाड़ी-शुद्धि की क्रियाओं में अपनी बुद्धि का संयोग नहीं करना चाहिये। दृष्टाभाव से जो कुछ हो रहा है उसे होने दीजिए। किस साधक को कब क्या आवश्यक है वैसी ही क्रियाएँ कुण्डलिनी माता की कृपा से स्वतः होने लगती है। सिद्धयोग की यही विशेषता है कि इसमें सद्गुरुकृपा से स्वयं क्रियायें होती हैं। अतः उनसे हानि की कोई सम्भावना नहीं है। जबकि अपने प्रयत्न से करने पर क्रियाओं का परिणाम विपरीत भी हो सकता है। आचार्य श्री ने अन्तर्जगत की भूमिकाओं तथा विघ्नों के निवारण के उपाय बताकर साधकों का मार्गदर्शन किया।

'दिवस जात नहि लागत बारा' की उक्ति के अनुसार नित्यप्रति प्रातः पाँच बजे से रात्रि बारह एक और कभी-कभी दो बजे तक- अध्यात्म ऊर्जा में समय का बोध ही नहीं होता है। तीस जून का दिन आश्चर्य, उत्कण्ठा, वियोग के दुःख और दिव्य स्मृतियों को समेटने के लिए आ उपस्थित हुआ। सभी आगन्तुक साधक साधिकाओं की मूक प्रार्थना श्री सद्गुरुदेव ने सुन ली। श्री विजयपुरी ने समाचार दिया कि आज ठीक पाँच बजे महात्मा जी (श्री अमित पुरी जी) को कुछ क्षणों के लिए संगत के बीच में आने की श्री सद्गुरुदेव से आज्ञा हुई है। ज्ञातव्य हो कि वे कई वर्षों से मौन रहकर एकान्त में अहर्निश साधनारत हैं और किसी से नहीं मिलते। बहुत समय के बाद आज श्री प्रभुजी ने अपना विशेष सन्देश देने के लिए उन्हें सत्संग में भेज दिया। उन्होंने लिखकर श्री विजयपुरी जी के माध्यम से श्री गुरुदेव का सन्देश सुनाया। जिसका सार इस प्रकार है। यहाँ आने वाली प्रत्येक जीवात्मा श्री प्रभुजी के विधान से उपस्थित हुई है। यह तपस्थली केवल तप के लिए है। जो लोग यहाँ आकर भी भोजन करके सोने में पड़े रहे और भजन नहीं किया अथवा पिकनिक के मूड में इधर-उधर चामुण्डा आदि घूमने चले गए उनके लिये भविष्य में यहाँ एक इंच भी स्थान नहीं है। घूमते-घूमते जीवन नष्ट हो जायेगा, स्थान बने रहेंगे। इसलिए माया के चकाचौंध में जीवन को नष्ट न करो यहाँ तप, जप और ध्यान करने से बेड़ा पार हो जायेगा। श्री प्रभुजी कहते हैं कि उन्हें Quality चाहिए Quantity नहीं। साधक चाहे थोड़े हो किन्तु सच्चे हों। भीड़ से यहाँ कोई सरोकार नहीं है।

महात्मा जी ने पंचाक्षरी का सामूहिक जप कराने के बाद ध्यान कराया उसके बाद साष्टांग दण्डवत् कर अमृत फल का प्रसाद ग्रहण करने का सन्देश देकर पुनः श्री गुरुदेव की आज्ञा में बद्ध हो अपनी साधना के लिए उठकर चले गये। सभी साधक साधिकायें दिव्य भावों को हृदय सम्पुट में समेटकर अगले दिन अपने-अपने गन्तव्यों को लौटते हुए कह रहे थे श्री पुरी भाई जी का अहैतुक आत्मीय प्रेम और सद्गुरुदेव की कृपा प्राप्त करने शीघ्र पुनः आयेंगे।

***

नेत्र-ज्योति-प्रकाशिनी-नेति-४

नेति-क्रिया की आवश्यकता

(गतांक से आगे)

नेति जिस प्रकार नासिका के एक छिद्र में की जाती है, उसी प्रकार दूसरे छिद्र में भी करनी चाहिए, ताकि समस्त मल बाहर निकल जाय। कभी-कभी साधक प्रथम प्रयास में नेति-क्रिया करने में सफल नहीं होता और नेति कण्ठ तक नहीं आ पाती, बीच ही में रुक जाती है या टेढ़ी हो जाती है, इससे साधक को साहस नहीं छोड़ना चाहिए। नेति रुक जाने और आगे न बढ़ने तथा इकट्ठी हो जाने का कारण यही होता है कि या तो नेति नासिका के छिद्र से अधिक मोटी होती है या ढीली होती है अथवा नासिका के छिद्र में सूजन होती है या कुछ मांस बढ़ा हुआ होता है। इस दशा में यदि नेति मोटी हो तो पतली नेति का प्रयोग करना चाहिए, यदि नासिका में सूजन हो तो गरम जल की जल-नेति, जिसकी क्रिया आगे बताई जायेगी, करनी चाहिए। जिससे नासिका का मार्ग स्वच्छ हो जायेगा। यदि नासिका के छिद्र का मांस बढ़ा हुआ हो तो पतली नेति बनाकर इसे ६ माशे गरम मोम में तर करके चिकनी बनाकर और अंगौछे से साफ कर प्रयोग करनी चाहिए। ऐसा करने से नेति-क्रिया सरलता से हो जायेगी। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नेति कुछ ऊपर जाकर आगे नहीं बढ़ती या साधक नासिका के एक छिद्र में नेति-क्रिया करने में सफल हो जाता है और दूसरे छिद्र में बार-बार नेति डालने पर भी नेति आगे नहीं जाती है। इस दशा में साधक को साहस नहीं छोड़ना चाहिए, बल्कि जब नेति आगे न बढ़ती हो तो उसे नासिका से धीरे-धीरे बाहर निकाल लेवें, उसे जल से धोकर सीधी एक हाथ से ऊपर की ओर ढकेलें तो नेति अवश्य कण्ठ तक पहुँच जायेगी। यदि ऐसा करने पर भी सफल न हो तो उस दिन नेति-क्रिया बन्द कर दें। दूसरे दिन फिर प्रयत्न करें, दूसरे दिन पहले दिन की अपेक्षा कष्ट कम होगा छींकें भी कम हो जायेंगी और नाक में खुजली भी अधिक न होगी। साधक जिस छिद्र द्वारा नेति ऊपर नहीं चढ़ा सका वह या दूसरे या तीसरे दिन उस छिद्र द्वारा नेति को प्रवेश कर मुख से निकालने में अवश्य ही सफलता मिलेगी। छींकें आना या नाक में खुजली होना केवल प्रथम तीन-चार दिन तक ही होता है, इसके बाद बड़ी सुगमता से नेति नासिका द्वारा धीरे-धीरे प्रविष्ट कर और मुख द्वारा निकाल कर तथा उसे उल्टी सीधी फेर कर मुख मार्ग से निकाल लेता है। तब उसे किञ्चितमात्र भी कष्ट नहीं होता और शौच, दन्त-धावन (दातुन) आदि की भांति नेति-क्रिया भी नित्यक्रिया बन जाती है। समय भी केवल अधिक से अधिक तीन मिनट लगता है। सूत्र-नेति करने के पश्चात् जल-नेति परमावश्यक है। नेति-क्रिया करने का समय शौचादि क्रिया के पश्चात् और स्नानादि से प्रथम है। साधारणतः दन्तधावन क्रिया करने के पश्चात् और स्नान करने के पूर्व नेति-क्रिया कर लेनी चाहिए। किसी-किसी साधक के गले पड़े होते हैं, उन्हें चाहिए कि नासिका द्वारा दूध पीकर प्रथम गला शांत कर लें, पुनः नेति-क्रिया आरम्भ करें जिससे कि वे नेति-क्रिया का पूर्ण लाभ उठा सकें।

जल नेति-क्रिया करने की विधि

सूत्र-नेति करने के बाद जल-नेति करना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार नाली में बांस, झाडू फेरने के पश्चात् उसे पूर्णतया स्वच्छ करने के लिए उसमें जल डालना आवश्यक है तभी वह पूर्णतया पवित्र होगी, इसी प्रकार जल-नेति भी अत्यावश्यक है। पर साधक को प्रथम अपनी शारीरिक प्रकृति जान लेनी चाहिए कि उसका स्वभाव उष्ण प्रकृति का है या शीत प्रकृति का। इसका जानना सरल है। यदि गर्म पदार्थ खाने से गर्मी या जलन मालूम हो और वह पदार्थ पचने पर कुछ हानि न पहुँचाये और शीत पदार्थ उसे हानि पहुँचाये तो मानना चाहिए कि प्रकृति वायु की है। जुकाम हुआ हो अथवा सिर भारी रहता हो, उसकी प्रकृति गर्म होगी तो दिन में सिर दुखता रहेगा और रात्रि में सिर दुखेगा और दिन में आराम रहेगा। इस प्रकार प्रकृति का ज्ञान करके यदि ठण्डी प्रकृति वाला साधक हो तो उसे साधारण उष्ण जल जो कि सहन हो सके और यदि गर्म प्रकृति वाला साधक हो तो ठण्डा ताजा जल लेना चाहिए। जल टोंटीदार बर्तन में (जिसमें आधा सेर जल आ जाए) लेकर पैरों के बल मेरुदण्ड को सीधा किए हुए बैठना चाहिए और जल में थोड़ा सा नमक भी मिला लेना चाहिए। इसके बाद जैसा कि चित्र के देखने से ज्ञात होता है, उसी प्रकार अपने समीप जल का लोटा रखकर हाथ में टोंटी लेकर बैठे और अपने सिर को बाईं ओर झुका लें और जल वाले बर्तन की टोंटी नासिका के दायें छिद्र में रखकर नासिका में पानी डालना आरम्भ करें।

ऐसा करने से जल नासिका के बायें छिद्र से नीचे गिरने लगेगा। जब जल नीचे गिरने लगे, तो नासिका में बराबर जल डालते रहना चाहिए। जो कि दूसरे छिद्र से तीन पाव या १ सेर पानी निकालना चाहिए। ठीक इसी विधि से बायें छिद्र द्वारा पानी डालकर दायें छिद्र से बाहर निकालना चाहिए। यदि टोंटी वाला बर्तन बड़ा न मिल सके, तो छोटी टोंटी प्रयोग करें और उसे भर-भर कर प्रथम एक दो बार और फिर पाँच-छः बार जल-नेति करें।

दुग्ध व घृत-नेति

दुग्ध-नेति या घृत-नेति उन साधकों को करनी आवश्यक है, जिनके कपाल (दिमाग) में खुश्की उत्पन्न हो गई हो। यह क्रिया भी जल-नेति की भाँति साधक को करनी चाहिए तथा अपनी प्रकृति का ज्ञान करके गर्म अथवा ठण्डा दूध प्रयोग में लाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को यह शंका नहीं होनी चाहिए कि नासिका द्वारा दूध को व्यर्थ बहाने से क्या लाभ। जो लाभ होता है, वह तो ऊपर बता दिया गया है। रह गया दूध का बहाना सो इस शरीर की रक्षा के लिए, जो ईश्वर प्राप्ति का मुख्य क्षेत्र है, संसार के सारे पदार्थ बहाए जा सकते हैं। तो फिर दूध या घृत क्या वस्तु है ?

नोट-किसी भी साधक को भोजन करके अथवा कुछ खा पीकर नेति-क्रिया नहीं करनी चाहिए।

नासिकाधार नेति

पाठकों को ज्ञात होगा कि यह पीछे कहा जा चुका है केन्द्र-स्थान की कुछ नाड़ियों का मुख नीचे की ओर और कुछ का ऊपर की ओर है। इसी कारण सूत्र-नेति प्रकरण में यह कहा गया है कि नेति को ऊपर-नीचे धीरे-धीरे फेरना चाहिए। जिससे दोनों प्रकार की नसों में घर्षण हो और उनका मल बाहर आ जाए। किन्तु जल-नेति, घृत-नेति, दुग्ध-नेति इत्यादि क्रिया में तो एक ही ओर से जल, घृत इत्यादि डालकर निकाला जा सकता है। उल्टी नाड़ियों को स्वच्छ करना या उन्हें शक्ति प्रदान करने के लिए नासिकाधार-नेति की जाती है। इसलिए उपर्युक्त क्रिया की भी आवश्यकता पड़ती है। इस क्रिया का करना कठिन है और आश्रम में या किसी अनुभवी व्यक्ति से ही पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। पाठकों को ज्ञान के लिए हम यह वर्णन किए देते हैं कि उपर्युक्त क्रिया है क्या ? मुख द्वारा जल या दूध कण्ठ तक भरकर सिर को झुका ठोड़ी को छाती से लगाकर नासिका से श्वास द्वारा जल बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। किन्तु यह क्रिया कुछ कठिन है, इसलिए साधक को हमारे आश्रम में आकर या किसी अभ्यस्त गुरु से सीख कर करना चाहिए।

नेति-क्रिया यदि नित्य की जाय तो मनुष्य कभी भी नजला के किसी रोग से कष्ट नहीं उठाएगा। इसलिए यदि मनुष्य चाहता है कि मेरे कण्ठ, दन्त, नासिका, नेत्र तथा मस्तिष्क आयुपर्यन्त भली भाँति कार्य प्रतिपादन करते रहें तो उन्हें चाहिए कि स्नान करने से पूर्व नेति-क्रिया नित्य क्रिया करें, ऐसा करने से मनुष्य आयुपर्यन्त अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत कर सकता है।

नेति रामबाण

आँखों की दुर्बलता तथा दृष्टिक्षीणता को दूर करने के लिए नेति-क्रिया रामबाण का कार्य करती है। यदि कोई व्यक्ति निरन्तर तीन मास तक नेति करता रहे तो शीघ्रातिशीघ्र ऐनक उतर जायेगी। आँखों की दृष्टि कितनी भी क्षीण क्यों न हो विविध नेतियों के अभ्यास से नेत्रों के समस्त रोग समूल नष्ट होकर नेत्रों की ज्योति पुष्ट हो जाती है। नेत्र रोगों में सूत्र-नेति या जल-नेति के पश्चात् आँखों को जल से धो लेना अधिक उपयोगी है। यदि नेत्र में कुकरे, परवाल सुर्खी इत्यादि रोग हों तो साधक को चाहिए कि दो सेर के लगभग स्वच्छ ताजा ठण्डा जल किसी पात्र में भरकर पास रख लेने के पश्चात् टोंटी द्वारा निम्न प्रकार आँखों को धोये। प्रथम भूमि पर लेट कर दायें हाथ के अंगूठे और तर्जनी की सहायता से पलकों को उल्टा कर बाँये हाथ से इस कोमलता से पकड़ें कि आँख के डेले पर जरा भी दबाव न पड़े और दायें हाथ से टोंटी द्वारा जल की धारा से धो डालें। इसी प्रकार दूसरी आँख को भी धो लेना चाहिए। इस प्रकार नियमित अभ्यास से उपर्युक्त रोगों की निवृत्ति हो जाती है। नेति-क्रिया जुकाम तथा सिर पीड़ा की निवृत्ति में अपना प्रभाव तत्काल दिखाती है, क्यों कि नेति के करने से नासिका के छिद्र, जो अब तक मल से रुके हुए थे, स्वच्छ हो जाते हैं जिससे श्वास समगति से आने आरम्भ हो जाते हैं और नाड़ियों में शुद्ध रस जिसे हम पीछे अमृत रस कहते आये हैं, उत्पन्न हो जाता है। जिन्हें नेत्र रोग का कष्ट है, उन्हें चाहिए कि वे नेति करने के बाद अगले

नेत्रों को अपने गुरु को दिखावें जिससे कि गुरु जी उनकी दशा देखकर आगे के लिए ऐसे साधक बतावें जिनके द्वारा यदि नेत्रों में कोई विकार रह गया हो तो वह भी दूर हो जाये। नेति क्रिया के पश्चात् नासिका द्वारा साधक की प्रकृति के अनुकूल उसे दूध या जल पिलाना चाहिए।

कपाल से नजला गिरना

जिस व्यक्ति के कपाल से नजला गिरता है उसके सिर में दर्द और चक्कर आने लगते हैं। दिमाग के निर्बल होने से स्मरण-शक्ति क्षीण होने लगती है। ऐसे व्यक्ति को नेति-क्रिया के पश्चात् नासिका द्वारा जल पीना चाहिए, पाव भर से आरम्भ करके धीरे-धीरे २ सेर तक बढ़ाना चाहिए। यदि एक सेर नित्य नासिका द्वारा जल पीने से कम लाभ हो तो फिर जल की जगह दूध नासिका द्वारा पीना चाहिए। दूध की मात्रा भी धीरे-धीरे जल की भाँति बढ़ानी चाहिए। यदि दिमाग से नजला सर्दी के कारण गिरता हो तो रोगी के यह लक्षण होंगे- उसके मुख का वर्ण श्वेत होगा, हर समय ऐसा प्रतीत होगा कि वह सो रहा है, सुस्ती बढ़ जायेगी और शीत वायु के स्पर्श से उसकी पीड़ा बढ़ जायेगी, ऐसी दशा में उसे नासिका द्वारा गर्म जल पिलाना चाहिए। इस क्रिया से विशेष लाभ नजर आने पर गुरु की आज्ञा से मुख द्वारा गर्म जल या दूध पीकर नासिका द्वारा निकालना चाहिए। इस क्रिया से तुरन्त लाभ होगा किन्तु नेति नित्य करना चाहिए। उपर्युक्त क्रिया से मिरगी तथा पागलपन भी शीघ्र दूर हो जाता है। पागलपन दूर करने की लिए सूत्र-नेति का प्रयोग करना दुष्कर है, अतः पागल को जल-नेति करवानी चाहिए। उन्हें नाक द्वारा जल या दूध पिलाना सुगम है। इस क्रिया से पागलपन शीघ्र दूर हो जाता है परन्तु अनुभवी योगी गुरु के बिना पागलों की चिकित्सा स्वयं करनी चाहिए।

जुकाम की निवृत्ति

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्रत्येक रोग का कारण जानना आवश्यक है। जुकाम में भी यह जान लेना अवश्य चाहिए कि जुकाम सर्दी के कारण हुआ अथवा गर्मी के कारण यदि सर्दी के कारण हुआ हो तो सूत्र-नेति के बाद अथवा नेति का समय न होने पर जल-नेति, जल में थोड़ा नमक मिलाकर करने के पश्चात् नासिका द्वारा गर्म जल पीने से जुकाम दूर हो जायेगा। इसी प्रकार गर्मी से उत्पन्न होने वाले जुकाम ठण्डा अथवा ताजा जल पीने से दूर हो जाता है। जल कम से कम एक पाव पीना चाहिए।

नासिका के समस्त रोग-पीनस इत्यादि की निवृत्ति

नासिका के समस्त रोग नेति-क्रिया करने के पश्चात् नासिका द्वारा अपनी प्रकृति के अनुकूल ठण्डा या गर्म जल पीने से शीघ्र दूर हो जाते हैं। नासिका के रोगों में जल, दूध अथवा घी मुख से पीकर नासिका से निकालना पड़ता है जिससे अवश्यमेव रोग दूर हो जाते हैं।

***

ॐ भगवान श्री सदाशिव प्रभवे नमः   ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः   ॐ श्री सद्गुरु चरणेभ्यो नमः।

ॐ

श्री सिद्ध गुफा योग साधक मण्डल कानपुर के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में

योग योगेश्वर अनन्त महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरण कमलों में समर्पित

अष्टम सिद्ध योग शिविर

दिनांक अक्टूबर १८ से २१, २००२ तक

स्थान : कम्यूनिटी सेन्टर, टाइप II, आई० आई० टी० कानपुर

सभी सम्माननीय गुरु भाई बहन एवम् श्रद्धालु साधकों को सूचित किया जाता है उपरोक्त तिथियों में आयोजित सिद्ध योग कार्यक्रम में सम्मिलित होकर शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभ उठायें। इस अवसर पर यौगिक आसन, जीवन तत्व साधन, यौगिक षटकर्म, योग द्वारा असाध्य रोगों की चिकित्सा, मन्त्र जाप तथा यौगिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त संकीर्तन आदि का कार्यक्रम सम्पादित होगा।

कार्यक्रम

प्रातः

५.०० से ६.०० बजे तक सूक्ष्म आरती तथा ध्यान

६.०० से ७.३० बजे तक जीवन तत्व साधन, आसन एवम् षटकर्म

७.३० से ८.३० बजे तक आरती व गीतापाठ

८.३० से ९.०० बजे तक स्वल्पाहार

९.३० से १०.३० बजे तक संकीर्तन

१०.३० से १२.३० बजे तक प्रवचन

सायं

३.३० से ५.३० बजे महिला संकीर्तन

५.३० से ६.३० बजे भजन

६.३० से ७.०० बजे आरती

७.०० से ९.०० बजे तक प्रवचन

सम्पर्क हेतु दूरभाष :- ०५१२-५९८२६७, ५९२२००, ५९८६५८, ५१३०८९, ५९७९५१

नोट :- पूरा कार्य-क्रम सधन पर आधारित होगा। दिनांक १९ अक्टूबर, २००२ को पूरे दिन का अनुष्ठान रहेगा और सम्पूर्ण कार्य-क्रम में भोजन व्यवस्था साधना को ध्यान में रखते हुए की जायेगी।

प्राण की श्रेष्ठता

सब इन्द्रियों में कौन श्रेष्ठ है ? इसका उत्तर उपनिषदों में एक अतीव हृदयग्राहिणी आख्यायिका के द्वारा दिया गया है। इस विषय का वर्णन छान्दोग्य, कौषीतकि तथा प्रश्नोपनिषद् में आया हुआ है। छान्दोग्य का वर्णन पूर्ण ही नहीं, प्रत्युत सबसे प्राचीन भी माना जाता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। आरण्यक में भी यह कथानक ज्यों–का–त्यों मिलता है। ऐतरेय आरण्यक के दूसरे आरण्य के पहले अध्याय के चतुर्थ खण्ड में यह इन्द्रिय–प्राण–संवाद बड़ी ही सुन्दर रीति से दिया गया मिलता है।

चक्षु, श्रवण आदि इन्द्रियों में आपस में यह स्पर्धा चली कि उक्थ कौन है ? सब झगड़ने लगे कि मैं ही उक्थ हूँ, मैं ही उक्थ हूँ। अन्त में उन्होंने कहा कि हम लोग इस शरीर से निकल चलें, जिसके निकल जाने पर यह शरीर नष्ट हो जाय तथा गिर पड़े, वही सबसे श्रेष्ठ माना जाय। पहले वागिन्द्रिय निकल गयी। परन्तु यह शरीर बिना बोले खाते–पीते टिका रहा। अनन्तर चक्षु निकल गया, यह देह बिना देखे खाते–पीते टिकी रही। श्रवण निकल गया, यह शरीर बिना सुने खाते–पीते टिका रहा। मन के निकल जाने पर भी यह शरीर मूँदे हुए की तरह खाते–पीते बना रहा; परन्तु प्राण के बाहर निकलते ही यह शरीर गिर पड़ा। इस पर भी प्राण की श्रेष्ठता के विषय में इन्द्रियों को निश्चय नहीं हुआ। अब भी वे आपस में झगड़ा करती ही रहीं। अब यह स्थिर हुआ कि जिसके प्रवेश करने पर यह शरीर उठ खड़ा हो, वही उक्थ है–वही हममें श्रेष्ठ है। वागिन्द्रिय पहले घुसी, परन्तु यह शरीर सोया ही रहा। चक्षु, श्रवण, मन बारी–बारी प्रवेश करते गये, परन्तु कोई परिणाम नहीं हुआ। यह शरीर पहले की भाँति ही सोया सा रहा–पृथ्वी पर से उठ नहीं सका। अन्त में प्राण ने प्रवेश किया, उसके प्रवेश करते ही यह शरीर उठ खड़ा हुआ। अतः प्रतिज्ञा के अनुसार प्राण ही उक्थ माना गया। वही सब इन्द्रियों में श्रेष्ठ माना गया।

आरण्यक का यह वर्णन उपनिषद् के वर्णन से कई अंशों में भिन्न–सा है। उपनिषद् में तो प्राण के निकलते समय शरीर की अन्य इन्द्रियों के खिन्न तथा निर्जीव होने की घटना का वर्णन है, परन्तु इस आरण्यक में प्रवेश से पतित शरीर को खड़ा करा देने की योग्यता का एक नवीन उल्लेख प्राण के विषय में किया गया है। प्राण की श्रेष्ठता इस प्रकार उत्क्रमण से ही नहीं, बल्कि प्रवेश से भी सिद्ध की गयी है। इस आरण्यक के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि यह विषय ऋग्वेद की संहिता में भी निर्दिष्ट किया गया है। इन्द्रियों ने 'त्वमस्माकं तव स्मसि' (तुम हमारे स्वामी हो और हम तुम्हारे भृत्य हैं) कहकर प्राण की श्रेष्ठता स्वयं मानी है।

SIDDHYOG Regd. No. L.AG. 008

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTE
BOOK-POST

श्री ....
.... Bhawan, Lower
28 111
....

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु वं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।

(मुण्डकोपनिषद् ३/१/८)

यह परमात्मा न तो नेत्रों से, न वाणी से और न दूसरी इन्द्रियों से ही ग्रहण करने में आता है तथा तप से अथवा कर्मों से भी यह ग्रहण नहीं किया जा सकता। उस [illegible] परमात्मा को तो विशुद्ध अन्तःकरणवाला साधक उस विशुद्ध अन्तःकरण से निरन्तर [illegible] ध्यान करता हुआ ही ज्ञान की निर्मलता से देख पाता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज [illegible] राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र [illegible] आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326
सम्पादक–आचार्य पं० (डॉ.) दासलाल शर्मा